मीरां के जीवन से सम्बंधित स्रोत सामग्री का अध्ययन

(एम.फिल. उपाधि हेतु लघु शोध प्रबंध)

Study of Source Materials Related to Meeran's Life

शोध निर्देशक
प्रो. मैनेजर पाण्डेय

शोधार्थी
अरविन्द सिंह तेजावत

भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067

2006

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
Centre of Indian Languages
School of Language, Literature, & Culture Studies
NEW DELHI-110067, INDIA

Dated: 28-07-2006

DECLARATION

I declare that the work done in this dissertation entitle ***"Study of Source Materials Related to Meeran's Life"*** by me is an original work and has not been previously submitted for any other degree in his or any other University / Institution.

Arvind Singh Tejawat
(Research Scholar)

(Prof. Manager Pandey)
CIL//SLL & CS/JNU

Prof. Mohd. Shahid Husain
(Chairperson)
CIL/SLL & CS/JNU

GRAM: JAYENU, TEL. : (91-011) 26717676, 26717557 Extn. : 4217, (D) 26704217 Fax : (91-011) 26717603, 26717586

पूज्य मम्मी-पापा, आदरणीय हिमांशु सर एवं प्रिय अमिता के लिए ...

भूमिका

मीरां का जीवन महानता, चमत्कार, किवदंतियों, संघर्ष, प्रतिरोध, सौभाग्य एवं दुर्भाग्य की मिली जुली कहानी प्रस्तुत करता है। मारवाड़ के एक साधारण गांव एवं परिवेश से उठकर मीरां उस समय के सबसे शक्तिशाली राज परिवार का हिस्सा बनती है किन्तु दुर्भाग्य से शीघ्र ही मीरां को वैधव्य का अभिशाप भोगना पड़ता है। उसे सती करने के प्रयास किए जाते हैं किन्तु वह प्रतिरोध का साहस दिखाती है एवं संघर्षमय जीवन की चुनौती को स्वीकार करती है। एक महान व्यक्तित्व की भांति कुशाग्र बुद्धि एवं राजीनतिक चातुर्थ का परिचय देते हुए मीरां दरबारी षड्यंत्रों का डटकर मुकाबला करती है एवं राजनीतिक मोर्चे पर हार के बावजूद सांस्कृतिक मोर्चे पर मीरां की उपलब्धियां सदियों-सदियों तक वंदनीय बन जाती हैं जिनसे आज का स्त्री आंदोलन भी ऐतिहासिक प्रेरणा ग्रहण कर सकता है।

मीरां का जन्म भले ही राज परिवार में हुआ हो किन्तु उसके व्यक्तित्व का वास्तविक साक्षात्कार लोक के माध्यम से ही किया जा सकता है। यह कम विडम्बनापूर्ण बात नहीं थी कि राजकुल की एक स्त्री को राजसत्ता से प्रताड़ना मिली किन्तु लोक ने उसे हमेशा प्यार दिया। एक परम्परवादी एवं रूढ़िवादी जाति में जन्म लेकर भी मीरां प्रगतिशील एवं नवचेतना से युक्त थी। तत्कालीन बुद्धिजीवी वर्ग एवं पंड़ितों ने मीरां की उपेक्षा की किन्तु करीब की भांति मीरां भी अपने समकालीन बुद्धिजीवियों में सर्वाधिक बुद्धिमती सिद्ध हुई।

इन तमाम तथ्यों के बावजूद हिन्दी आलोचना ने मीरां के साथ न्याय नहीं किया। कबीर को तो फिर भी न्याय मिल गया किन्तु मीरां मध्यकाल मे भी अत्याचार का शिकार हुई और आधुनिक काल में भी उसे उपेक्षा मिली।

मीरां ने एक रणनीति के तहत स्वयं को भक्त के रूप में प्रस्तुत किया था, ताकि वह अपने राजनीतिक एवं सामाजिक आंदोलन को एक निश्चित परिणति तक पहुंचा सके परन्तु दुर्भाग्य वश मीरां के प्रसंशक इसे समझ नहीं पाए एवं मीरां को महान भक्त सिद्ध करने के क्रम में- कृष्ण के प्रति पूर्ण समर्पण से लेकर मीरां के पागलपन तक की बात भी हुई। लोक ने तो हद ही कर दी और ऐसी-ऐसी किवदंतियां गढ़ ली कि कम्प्यूटर

युग में जीने वाले इंसान का सिर चकरा जाए परन्तु इन बातों ने यह जरूर सिद्ध कर दिया कि लोक मीरां को किस हद तक प्रेम करता है। अंतिम सत्य यही है कि मीरां न तो भक्त थी, न कवयत्री, न ही कुछ और, वह एक चतुर राजनेता एवं राजनीतिक व सामाजिक आंदोलन की प्रणेता थी, जिसने न केवल मध्यकाल में सामंतवाद के सामने जबरदस्त चुनौती प्रस्तुत की वरन् स्त्री आंदोलनों एवं विद्रोहों का शुभारंभ भी किया।

जब मैंने इस शोध प्रबंध पर कार्य करना आरंभ किया था तब सोचा था कि मारवाड़ व मेवाड़ के पुरातात्विक सर्वेक्षण एवं उन स्थलों से तथ्य व सामग्री संग्रहण के पश्चात् वृंदावन व द्वारिका की यात्रा भी करूंगा पर समय व धन की कमी के कारण यह संभव नहीं हो सका जिसका मुझे दु:ख है किन्तु सौभाग्य से मालवा व मिथिला की यात्रा के कारण कुछ नए तथ्य भी हाथ लग गए जिनसे मीरां के बारे में समझ विकसित करने में महत्वपूर्ण मदद मिली। प्रस्तुत शोध प्रबंध से यदि मीरां संबंधी आलोचना में कुछ भी अतिरिक्त जुड़ सका तो इसे मैं अपना सौभाग्य समझूंगा। अंत में गुरुजनों एवं मित्रों को धन्यवाद जिन्होंने शोध प्रबंध को पूरा करने में प्रेरणादायी एवं सहयोगात्मक भूमिका निभाई।

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली- 110067
26 जुलाई 2006

अरविन्द सिंह तेजावत
5-ई, ब्रह्मपुत्र
जे.एन.यू.
नई दिल्ली-110067

विषयानुक्रमणिका

भूमिका	**iv-v**
विषयानुक्रमणिका	**vi**
विषय प्रवेश	**1-1**
प्रथम अध्याय	**1-31**
मंदिर, महल एवं शिलालेख (पुरातात्विक स्रोत सामग्री)	
द्वितीय अध्याय	**32-54**
मूर्ति शिल्प (पुरातात्विक स्रोत सामग्री)	
तृतीय अध्याय	**55-86**
हस्तलिखित पांडुलिपियां, भक्तमाल एवं वार्ता साहित्य (साहित्यिक स्रोत सामग्री)	
चतुर्थ अध्याय	**87-114**
किवदंतियां, परम्पराएं एवं रीति-रिवाज़	
पंचम अध्याय	**115-136**
ऐतिहासिक विवरण एवं आलोचनात्मक ग्रंथ	
उपसंहार	**137-139**
परिशिष्ट	**140-146**
(क) शिलालेख एवं शैलचित्र	
(ख) मूर्तियां, मंदिर, महल तथा शिलालेख	
संदर्भ-सूची	**147-152**

विषय प्रवेश

अध्याय एक

मंदिर, महल एवं शिलालेख

(पुरातात्विक स्रोत सामग्री)

विषय प्रवेश:

मीरां एक क्रांतिकारी व्यक्तित्व लेकर पैदा हुई थी। पांच सौ वर्षों के लम्बे समय ने मीरां के वास्तविक चरित्र को न केवल बहुत कुछ ढंक लिया है, वरन् उसका एक भिन्न ही रूप निर्मित कर दिया गया है। जो मीरां किसी जमाने में सामाजिक परिर्वतन एवं राजनैतिक हलचल की केन्द्र बिन्दु थी, वही मीरां आज केवल भक्त बनकर रह गयी हैं। आज मीरां की मृत्यु के लगभग पांच सौ वर्ष पश्चात् उसके जीवन से सम्बंधित स्रोत सामग्री के अध्ययन द्वारा उस युग की वास्तविक मीरां को पुन: प्रकाश में लाने का प्रयास किया गया है।

अध्याय एक

मंदिर, महल एवं शिलालेख

(पुरातात्विक स्रोत सामग्री)

मीरां को मेवाड़ की कुलवधू बनाना विशिष्ट राजनीतिक जरूरत का परिणाम था। राणा सांगा यह अच्छी तरह समझते थे कि राठौड़ों को साथ लिये बिना दिल्ली के तख्त पर कब्जा करने का स्वप्न किसी भी सूरत में पूरा नहीं किया जा सकता। राणा सांगा द्वारा मीरां को मेवाड़ की कुलवधू बनाना, राठौड़ों की एक महत्वपूर्ण शाखा मेड़तिया राठौड़ों को अपने पक्ष में करने के उद्देश्य से प्रेरित था। कुलवधू के रूप में मीरां को मेवाड़ में एक विशिष्ट राजनीतिक हैसियत प्राप्त थी। मीरां को अपने ससुर द्वारा पुर तथा मांडल के परगने प्रदान किए गए थे, जिसके राजस्व का उपयोग मीरां अपनी निजी जरूरतों के अलावा अन्य कार्यों में भी किया करती थी। चित्तौड़ स्थित मीरां मंदिर का निर्माण पुर तथा मांडल से प्राप्त राजस्व से ही हुआ था। मीरां मंदिर के बारे में एक दूसरा तर्क यह भी दिया जाता है कि चूंकि इसी मंदिर में मीरां अपने इष्ट देव कृष्ण की आराधना किया करती थी अत: उसका नाम मीरां मंदिर पड़ा।[1] वास्तव में देखा जाए तो दोनों ही तर्क सही प्रतीत होते हैं। राजपूताने में ऐसे अनेक उदाहरण मौजूद हैं, जिनमें युवरानियों ने अपने राजस्व का उपयोग निर्माण कार्यों में किया हो। अर्बुद पर्वत स्थित सास-बहू का मंदिर इसका उदाहरण है। बहुत कुछ संभव है चित्तौड़गढ़ स्थित मीरां मंदिर का निर्माण भी मीरां ने ही करवाया हो। यदि ऐसा है तो चित्तौड़ राजघराने में युवरानी के रूप में मीरां की क्या हैसियत रही होगी इसका सहज

की अनुमान लगाया जा सकता है। यदि ऐसा नहीं भी है एवं केवल मीरां के वहाँ आराधना करने के कारण उस मंदिर का नामकरण मीरां मंदिर हुआ हो तब भी जनसाधारण में मीरां कितनी लोकप्रिय रही होगी, इसका अनुमान लगाया जा सकता है। हमारे देश में परम्परा है कि भवनों व मंदिरों का नाम प्रायः उनके निर्माताओं के नाम पर रख दिया जाता है। इस तर्क के आधाार पर भी कहा जा सकता है कि मीरां मंदिर का निर्माण मीरां ने स्वयं को प्राप्त राजस्व से ही करवाया है।

मीरां मंदिर के उत्तर में वाराह का मंदिर स्थित है। अपने आकार तथा भव्यता में यह मंदिर मीरां मंदिर से काफी विशाल तथा मुख्य मंदिर परिसर के केन्द्र में स्थित है। इसके चारों तरफ कुछ छोटे-छोटे मंदिर निर्मित हैं, जिनका निर्माण भिन्न-भिन्न निर्माताओं द्वारा हुआ है। वाराह मंदिर जैसे विशाल मंदिर का निर्माण किसी युवरानी की क्षमता से बाहर की बात थी। इस आधाार पर भी मीरां मंदिर के आकार प्रकार को देखते हुए विश्वास किया जा सकता है कि मीरां मंदिर का निर्माण युवरानी की सीमाओं के भीतर था।[2] मीरां मंदिर का निर्माण यदि मीरां ने नहीं भी करवाया होगा तब भी इतना तो निश्चित है कि इसकी निर्माण काल मीरां का काल ही रहा है एवं मीरां पर अध्ययन के सन्दर्भ में इसकी महत्ता तब और भी बढ़ जाती है जब कि हमें मालूम है कि मीरां अपने आराध्य देव कृष्ण की यहीं आराधना किया करती थी।

मीरां मंदिर हमें उस समय के महत्वपूर्ण पुरातात्विक साक्ष्य उपलब्ध कराता है। कहा जाता है कि इस मंदिर में भगवान कृष्ण की जो मूर्ति पूजी जाती थी, वह मुरलीधर कृष्ण की मूर्ति थी। मुरलीधर कृष्ण की पूजा वैसे तो एक साधारण घटना प्रतीत होती है किंतु यदि हम तत्कालीन मेवाड़ की धार्मिक स्थिति का अध्ययन करें तो निश्चित तौर पर यह एक क्रांतिकारी कदम था। मुरलीधर कृष्ण से पहले मेवाड़ में जितने भी देवी देवताओं की मूर्तियाँ स्थापित थी उनका सम्बंध किसी न किसी रूप में शास्त्रीय धर्मों से था। वास्तव में कृष्ण की मूर्ति ही वहाँ एक ऐसी पहली मूर्ति थी जो वस्तुतः शास्त्र से दूर लोक के ज्यादा नजदीक थी। इससे पूर्व मेवाड़ में कृष्ण पूजा के कोई पुरातात्विक साक्ष्य नहीं मिलते हैं। बीकानेर के राजकीय संग्रहालय में यद्यपि गिरधर कृष्ण की मूर्ति मिलती है, जिसमें कृष्ण ने गिरि को तर्जनी पर उठा रखा है एवं सारे नगरवासी गिरि की ओट में इन्द्र के कोप से स्वयं की रक्षा कर रहे हैं। गिरि के चारों तरफ घनघोर वर्षा हो रही है तथा गिरि की ओट से शरण प्राप्त पुरवासी भयभीत किंतु

प्रसन्नचित हैं। गिरधर कृष्ण की यह मूर्ति रंगमहल, बीकानेर से प्राप्त हुई थी। पुरातत्ववेत्ताओं ने इसका समय आरंभिक गुप्त काल बताया है। इस मूर्ति की एक अन्य विशेषता कृष्ण एवं पुरवासियों का लोक रंग लिए हुए होना है।[3] इसकी कथा पुराणों से ग्रहण की गई है।

अतः यह कहना कि मीरां ने कृष्ण भक्ति को लोकप्रिय बनाया अतिशयोक्ति होगी तथापि यह सत्य है कि न केवल मेवाड़ में वरन् शेष राजपूताने में भी कृष्ण भक्ति का प्रचलन अधिक न था। यद्यपि कृष्ण के विरोधाभासी व्यक्तित्व का आकर्षण सारे जनमानस में विद्यमान था तथापि बतौर महानायक ही कृष्ण आम जनता में लोकप्रिय थे। कृष्ण की वीरता, नटखटपन अथवा लीलाओं से आमजन का परिचय तो था (एक नायक के रूप में ही, ईश्वरीय शक्ति के रूप में नहीं)। इस समय जो देवता लोकप्रिय थे उनमें वारह, शिव, सूर्य तथा शक्ति का विशेष स्थान था। इन प्रमुख देवताओं के अलावा यम, लक्ष्मी, गौरी, ब्रह्मा, भैरव, गणपति आदि गौण देवताओं की भी लोकप्रियता कम न थी। गरूड़, कार्तिकेय, रेवंत आदि को पूजा तो नहीं जाता था तथापि मूर्तिशिल्प में उन्हें स्थान अवश्य मिलता था। इन ब्राह्मण देवताओं के अलावा लोक में जैन तथा बौद्व धर्म का भी व्यापक प्रसार था।[4]

जिस समय मीरां राणाजी से ब्याहकर मेवाड़ आई थी उस समय तक मेवाड़ में भी कृष्ण भक्ति के प्रसार के कोई पुरातात्विक साक्ष्य अथवा चिह्न उपलब्ध नहीं होते हैं। पुरातत्ववेत्ताओं की मान्यता है कि मीरां के समय तक मेवाड़ में कृष्ण भक्ति का विकास नहीं हुआ था। कृष्ण भक्ति का विकास मेवाड़ में बाद के समय में ही देखने को मिलता है। उस समय तक मेवाड में जिन देवताओं की पूजा प्रचलित थी उनमें सूर्य, शक्ति, शिव तथा विष्णु का विशेष स्थान था। मेवाड़ राजवंश शैव था तथा वे स्वयं को सूर्य का वंशज बताते हैं। शिव की लिंग रूप में, शक्ति को कालिका के रूप में, विष्णु को वाराह रूप में तथा सूर्य की मूर्ति रूप में पूजा होती थी।

तत्कालीन मेवाड़ की धार्मिक स्थिति सामाजिक मान्यताओं तथा राजनीति का अवलोकन करें तो मीरां का कृष्ण भक्त होना कुछ आश्चर्यजनक है। इसे प्रामाणिक तौर पर कहा जा सकता है कि मीरां का कृष्ण भक्त होना व्यक्तिगत आस्था का परिणाम न होकर सामाजिक, राजनैतिक तथा व्यक्तिगत जरूरत का परिणाम था। मीरां का समय धार्मिक आडंबरों, सामाजिक कुरीतियों तथा राजनीतिक अवसरवादिता का युग

था। स्त्रियों की दशा अच्छी न थी। सती प्रथा का आमतौर पर प्रचलन था। राजकीय संग्रहालय, उदयपुर में एक सती स्तंभ मिलता है। यह सती स्तम्भ सम्वत् 1471 का है। एक पुरुष योद्धा इस स्तम्भ पर अंकित किया गया है, जो तीव्र गति से दौड़ते हुए घोड़े पर बैठा हुआ है एवं उसके हाथ में एक भारी भाला है। उसकी आंखों से रौष टपक रहा है। इस पुरूष के नीचे नागरी लिपि में खुदे हुए लेख में बताया गया है कि आषाढ़ वदि 14 सम्वत 1471 को नाथीबाई सती हुई जिसका पति कोई राठौड राजपूत लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुआ। इस सती का पति चूंकि लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुआ था अतः उसे वीरसती कहा गया।[5] इसी प्रकार बीकानेर के राजकीय संग्रहालय में भी सती स्तम्भ मिले है, जिनका सम्बंधा मंडला जी तथा सवाई सिंह की मृत्यु से है। मंडला जी राव बीकाजी के चाचा थे। यह सती स्तम्भ विक्रम संवत 1505 का है एवं सारूण्डा, बीकानेर से प्राप्त हुआ था। दूसरा सती स्तम्भ कुछ बाद विक्रम सम्वत 1747 का है एवं भांडासर मंदिर, बीकानेर से प्राप्त हुआ था।[6] राजपूताने के कोने-कोने में ऐसे अनेक सती स्तम्भ मिल जाएंगे। इन सती स्तम्भों का समय वही समय है, जब मीरां का प्रार्दुभाव हुआ था। कुंवर भोजराज की मृत्यु के बाद मीरां को भी सती होने के लिए प्रेरित किया गया किंतु मीरां ने सती होने से साफ इनकार कर दिया। इस सम्बंन्ध में मीरां का एक पद प्रचलित है-

मीरां रै रंग लाग्यो हरि को
और सब सा अटक परी।
गिरधर गास्यां सती न होस्यां
मारौ मन मोह्यो घननामी
जेठ बहू को नातों न राणाजी
महै सेवक थै स्वामी
गिरधर कंत गिरधर धणी
मारे मा बाप तो वोई
थै थारै करै मैं मारै राणाजी
यू कैंवे मीरांबाई[7]

सती होने से इनकार करने के पीछे मीरां का तर्क था कि वह किसी कुंवर को नहीं वरन् कृष्ण को अपना पति मानती है। कृष्ण अजर अमर है एवं न कभी कृष्ण मरेंगे, न मीरां विधवा होगी एवं न ही वह सती होगी।

मीरां के समय तक सतीप्रथा कितना बीभत्स रूप ले चुकी थी इसका अनुमान राजकीय संग्रहालय, उदयपुर के 'जहाजपुर अभिलेख' से लगाया जा सकता है। महाराणा पृथ्वीराज द्वितीय के समय का यह अभिलेख अन्य सती स्तम्भों के समान ही एक सती स्तम्भ है। जिसका समय विक्रम सम्वत् 1226 दिया गया है। इस अभिलेख में सामूहिक रूप से सती होने वाली स्त्रियों के नाम दिए गए हैं। इनमें सतुन देवी, जिलिन देवी, पातल देवी, सिरिल देवी, सिलिश्री, रतन देवी, के नाम अंकित हैं। अन्य सती स्तम्भों की तरह लौहारी, जहाजपुर से प्राप्त इस अभिलेख के ऊपर भी पुरुषाकृतियाँ खुदी हुई हैं।[8] अनुमान किया जा सकता है कि विक्रम सम्वत् 1626 तक मेवाड़ में सामूहिक रूप से भी स्त्रियों को सती किया जाने लगा था। राजपूतों के युद्व में जाने से पहले उनकी स्त्रियों द्वारा सामूहिक रूप से आत्मदाह की घटना को 'जौहर' कहा जाता था। यह जौहर वस्तुतः सामूहिक सती प्रथा का ही विस्तार था। कभी-कभी एक ही जगह एकत्र न होकर अलग-अलग महलों में भी सामूहिक रूप से सती होने अथवा जौहर का आयोजन किया जाता था।

मालवा स्थित चंदेरी दुर्ग में भी एक सती स्तम्भ एवं छतरी मिलती है। यह सती स्तम्भ बैजू वावरा की समाधि के ठीक निकट स्थित है। आक्रमणकारियों द्वारा चंदेरी दुर्ग पर आक्रमण के साथ ही इस दुर्ग की राजपूत स्त्रियों ने 'जौहर' अथवा सामुहिक सती उत्सव का आयोजन किया था। उसी की स्मृति स्वरूप यह स्मारक निर्मित किया गया। इन सती स्तम्भों से इस निष्कर्ष तक पहुंचना आसान है कि उस पूरे प्रदेश अर्थात् पश्चिम-मध्य भारत जिसमें मेवाड़, मारवाड़, मालवा एवं गुजरात के प्रदेश आते हैं की राजपूत जातियों में सती प्रथा का प्रचलन आम था एवं उसे गौरवान्वित किया जाता था। इस प्रथा को अंध विश्वास के सहारे और अधिक सुदृढ़ एवं स्थायी बना दिया गया था जैसा कि चंदेरी दुर्ग के सती स्तम्भ से पता चलता है। इस दुर्ग में जो सती स्तम्भ बना हुआ है उसमें मुख्य रूप से तीन प्रकार के चित्रों को उत्कीर्ण किया गया है। सबसे नीचे स्थित चित्र में राजपूत स्त्रियों को सती होते हुए दिखाया गया है, इसके ऊपर युद्ध का दृश्य उत्कीर्ण है एवं सबसे ऊपर राजपूत योद्धाओं को उनकी

स्त्रियों के साथ स्वर्ग में शिवलिंग की आराधना करते हुए दिखाया गया हैं। अर्थात् इस प्रकार का अंधविश्वास सृजित किया जाता था कि यौद्धा युद्ध में मरकर तथा स्त्रियां सती होकर स्वर्ग में जाती है।[9] सारांश यही है कि मीरां जिस यौद्धा जाति से संबंधित थी वह रूढ़ियों अंधविश्वासों एवं सती प्रथा जैसी बुराइयों से ग्रस्त थी। साथ ही साथ उस पूरे प्रदेश में अंधविश्वासों का बोलबाला था व स्त्रियों की हालत अच्छी न थी, मीरां ने इन्हीं अंधविश्वासों एवं कुरीतियों के विरूद्ध संघर्ष का ऐलान किया था।

मीरां की कर्मस्थली चित्तौडगढ़ दुर्ग में ही स्थित श्मशानघाट के ठीक बगल में महासती स्थल अवस्थित है, जहाँ स्त्रियों को उनके पति के साथ सती किया जाता था। मेवाड़ महाराणाओं के सांस्कृतिक मोर्चे पर पराजय के साक्षी इस महासती स्थल अथवा जौहर कुण्ड के ठीक पास में कीर्ति स्तम्भ बना हुआ है।[10] जौहर एवं सती प्रथा के पीछे निश्चित राजनीतिक उद्देश्य विद्यमान थे। राजपूताने की राजनीति एवं राजनीतिक षडयंत्रों में अपने सामंत पतियों के साथ-साथ उनकी स्त्रियों की भी विशेष भूमिका रहती थी। उस समय मेवाड़ केन्द्रीय शक्ति होने के कारण उन घटनाओं और षड़यंत्रों का केन्द्र माना जाता था। सामंत अथवा कुंवरो की मृत्यु पश्चात उसकी स्त्री को सती करके उसके तथा उसके परिवारवालों के राजनीतिक हस्तक्षेप से हमेशा-हमेशा के लिए मुक्ति प्राप्त कर ली जाती थी।

अनुमान किया जा सकता है कि चित्तौड़ दुर्ग में मीरां किस वातावरण में रह रही होगी। सती होने से इनकार करने एवं कृष्ण भक्ति को अंगीकर कर उन्होंने किस नैतिक साहस का परिचय दिया होगा। मीरां के ससुराल वाले शैव मतानुयायी एवं पीहर वाले वैष्णव मतानुयायी थे। अगर मीरां कृष्ण भक्त न होकर शैव अथवा वैष्णव मतानुयायी होती तो स्वयं के सती न होने का उनके पास एक भी तर्क नहीं रहता परंतु कृष्ण भक्त बनकर वह कह सकती थी कि "मारो मन मगन स्याम लोग कह्यो भटकी"। कथा तो यह भी प्रचलित है कि शिव की पूर्वपत्नी 'सती' स्वयं अपने पिता के हवनकुंड में जलकर सती हो गई थी।

महासती कुंड के पास ही समिद्धेश्वर का मंदिर स्थित है। इस मंदिर में शिव को त्रिमूर्ति के रूप में पूजा जाता था। मंदिर की दक्षिण मुख्य प्रवेश की पश्चिमी दीवार पर गुजरात के चालुक्य नरेश कुमार पाल (मृत्यु-1207) का एवं दूसरी तरफ मण्डप की पश्चिमी दीवार पर महाराणा मोकल (मृत्यु-1485) का शिलालेख मिलता है।

1428 में महाराणा मोकल ने मंदिर का जीर्णोद्धार करवाया था, तब से यह मोकल जी का मंदिर कहा जाने लगा था। इन शिलालेखों से मेवाड़ के क्षेत्रीय विस्तार तथा अन्तर्देशीय सम्बंधों का ज्ञान होता है। मीरां के सम्बंध में इसकी उपयोगिता मीरां के पदों का मध्यकालीन स्वरूप निर्धारित करने में सिद्ध होती है। उल्लेखनीय है कि मीरां के समय में मेवाड़ राज्य का क्षेत्रीय विस्तार वर्तमान मेवाड़ की तुलना में काफी अधिक था, जिसमें मालवा व गुजरात भी सम्मिलित थे एवं उतने ही निकट सम्पर्क थे, जितने कि मारवाड़ गोड़वाड़ अथवा झालावाड़। इस दृष्टि से मीरां के पदों में गुजराती शब्दावली अनपेक्षित नहीं कही जा सकती। यहां तक कि उदयपुर की जगत शिरोमणी मंदिर स्थित शिलालेखों की भाषा भी गुजराती है।[11]

चित्तौड दुर्ग में मीरां का निवास स्थल महाराणा महल में स्थित युवराज का महल था। मीरां की लोकप्रियता के कारण वहाँ के स्थानीय लोगों ने मीरां के निवास स्थलों को भीरां महल ही नाम दे दिया। महाराणा महल वस्तुतः अनेक महलों से मिलकर बना है। इनमें सूरज गोखरा कॅवरपदे का महल एवं जनाना महल प्रमुख हैं। मीरां महल सहित अन्य सभी महल पत्थरों की सुदृढ़ दीवारों से बने हैं जो मध्यकालीन राजपूत स्थापत्य की विशिष्ट झलक प्रदान करते हैं।

महलों की बाह्य दीवारों को विभिन्न अलंकरणों द्वारा सुसज्जित किया गया था। इस महाराणा महल में मीरां के परदादिया ससुर कुंभा के समय अनेक परिवर्तन तथा परिवर्द्धन हुए एवं उसे कलात्मक स्वरूप प्रदान किया गया। मीरां के समय तक यह महल काफी विस्तृत हो चुका था एवं इसका राजसी वैभव लगातार बढ़ता जा रहा था।[12] इस समय राजपूताने का प्रत्येक राजघराना मेवाड़ की राजनीति में अपना प्रभुत्व जमाना चाहता था। देश में किसी केन्द्रीय सत्ता के अभाव तथा गुजरात, मालवा एवं राजपूताने के केन्द्र में स्थित होने के कारण मेवाड़ की शक्ति एवं प्रभाव बढ़ता जा रहा था। चित्तौड़ दुर्ग में हुए अधिकांश निर्माण कार्य इसी समय के हैं जो उस समय मेवाड़ राज्य के बढ़ते प्रभाव की सूचना देते हैं। राजपूताने का प्रत्येक महत्वाकांक्षी राजवंश मेवाड़ की गद्दी पर अपना प्रभुत्व जमाना चाहता था। महाराणा विक्रमादित्य द्वारा मीरां का उत्पीड़न इसी राजनीति का परिणाम था।

महाराणा महल में प्रवेश हेतु पूर्व में बड़ी पोल एवं त्रिपोलिया दरवाजे से होकर दक्षिण में स्थित खुले प्रांगण से होते हुए दरीखाने तक पहुंचा जाता था। यही

दरीखाना मध्कालीन मेवाड़ तथा राजपूताने की संसद थी जहाँ उत्सव - समारोह में मेवाड़ के प्रमुख जागीरदार आकर बैठा करते थे। मीरां महल तथा अन्य आवसीय परिसरों में प्रवेश हेतु यहीं से छोटे-छोटे प्रवेश द्वार बने हुए थे जहाँ महाराणा के सम्बंधियों के अलावा अन्य जागीरदारों का प्रवेश वर्जित था। मीरां महल पोलनुमा कमरों की कतार एवं एक बड़ी दीवार से दरीखाने से पृथक होता था।

महाराणा महल तथा मीरां महल के विस्तृत पुरातात्विक सर्वेक्षण से हमें मीरां के जीवन से संबंधित महत्वपूर्ण जानकारियाँ मिलती हैं। मीरां महल, महाराणा महल में मीरां के प्रभाव का द्योतक है। महाराणा महल में मीरां का रहना न केवल हाड़ा सामंतों के लिए असुविधाजनक था वरन् हाड़ाओं के भाणेज महाराणा विक्रमादित्य के लिए भी कुढ़न का कारण था। महाराणा महल में मीरां ही एक ऐसा मंच थी जो राठौड़ सामंतों को मेवाड़ की राजनीति में सीधे हस्तक्षेप का अवसर प्रदान करती थी। ऐसे में बनवीर की यह पूरी-पूरी कोशिश थी कि मीरां के लिए ऐसी स्थिति पैदा कर दे कि या तो वह स्वेच्छा से चित्तौड़ छोड़ दे अथवा उसे विष देकर मार डाला जाए।

मीरां महल के पीछे दुर्ग की दीवार दिखाई देती है जिसके एक तरफ विशाल बुर्ज बना हुआ है। इस बुर्ज पर पहरेदार आठों प्रहर पहरेदारी किया करते थे। किसी भी सैनिक हलचल की सूचना महाराणा महल तथा युवराज के महल को तुरंत मिल जाती थी। सामने दरीखाना था जो दिन के समय राजनैतिक हलचल का केन्द्र बिन्दु था। इस प्रकार मीरां, महल में अपनी विशिष्ट स्थिति के कारण किसी भी राजनीतिक हलचल एवं सैनिक योजनाओं व राजनीतिक षड़यंत्रों के निकट सम्पर्क में थी। महाराणा महल तथा युवराज के महलों में कुछ छोटे-छोटे मंदिर भी थे। युवराज, महाराणा, युवरानी अथवा महारानी अपनी व्यक्तिगत आस्था के अनुरूप इन मंदिरों में मूर्तियाँ स्थापित एवं प्रतिस्थापित करते थे। सार्वजनिक मंदिरों में भी राजनैतिक उद्देश्यों से मूर्तियाँ स्थापित एवं राजनीतिक दृष्टि से फायदा नहीं होने की सूरत में पूर्व स्थापित मूर्ति को प्रतिस्थापित करके अन्य मूर्ति स्थापित कर दी जाती थी।

मेवाड़ के महाराणा स्वयं को सूर्यवंशी बताते हैं अतः चित्तौड़ में गुहिल वंश की स्थापना के साथ ही उन्होंने दुर्ग में विशाल सूर्य मंदिर का निर्माण करवाया। यह वह समय था जब विदेशी प्रभाव के कारण सूर्यपूजा अत्यंत लोकप्रिय थी। कालान्तर में इस प्रदेश में शक्तों का प्रभाव बढ़ा एवं शक्तिपूजा लोकप्रिय होने लगी तब मेवाड़ के

महाराणाओं ने अपने पूर्व पुरूष सूर्य की मूर्ति हटाकर वहाँ कालिका मूर्ति स्थापित कर दी। आज भी सूर्य मंदिर में कालिका की मूर्ति स्थापित है। सूर्य मंदिर दुर्ग का प्राचीनतम मंदिर है जिसका अनेक बार जीर्णोद्धार करवाया गया। इस मंदिर के ठीक सामने एक तालाब है जिसके तट पर सूर्य पुत्र रेवंत का मंदिर स्थापित है। कहा जाता है कि रेवंत अपने पिता सूर्य की किरणों से इस तालाब जल की रक्षा करता था। मंदिर मंडप के प्रवेश द्वार के ठीक पास एक प्राचीन शिलालेख मिलता है। सदियों की वर्षा-धूप से यह जर्जरित हो चुका है अत: इसे पढ़ना कठिन कार्य है तथापि इस पर अंकित सूर्य का चिह्न साफ-साफ दिखाई देता है, इससे यह प्रमाणित होता है कि कालिका मंदिर पूर्व में सूर्य मंदिर था जिसे बाद में शाक्तों के प्रभाव में कालिका मंदिर में परिवर्तित कर दिया गया।[13] मंदिर मंडप के स्तम्भों पर कुछ खुदें हुए लेख मिलते हैं जिसमें उस समय के प्रमुख शाक्तों तथा नाथों के नाम मिलते हैं। गर्भगृह के ठीक बाहर वाले स्तम्भ पर नीचे की तरफ श्री एकलिंगजी तथा श्रीराम खुदा हुआ मिलता है। स्तम्भों पर खुदे लेखों में उनकी खुदाई की तिथियाँ भी अंकित हैं। इससे ज्ञात होता है कि ये लेख अलग-अलग समय में खुदे हैं। नाथों की गुरू शिष्य परम्परा का उल्लेख करने वाले लेख परवर्ती प्रतीत होते हैं मंदिर के सामने तालाब के किनारे मठ के भगनावशेष मिलते हैं यही योगियों का निवास स्थल था। इसके पास ही सूर्य कुण्ड स्थित है।[14]

सूरजपोल पुराने समय में दुर्ग का मुख्य प्रवेश द्वार था। इससे आगे अद्भुदनाथ मंदिर है इस मंदिर का मूर्तिशिल्प बताता है कि यह पहले जैन मंदिर था। जैन धर्म का प्रभाव घटते ही इसे शिव मंदिर में परिवर्तित कर दिया गया। इसी प्रकार कुंभामहल के निकट शृंगार चंवरी को जैन धर्म के बढ़ते प्रभाव को देखते हुए सम्वत 1505 तक जैन मंदिर में परिवर्तित किया जा चुका था। मंदिर के पश्चिमी द्वार स्तम्भ के शिलालेख के अनुसार विदित होता है कि कोला मीरां के परदादिया ससुर कुंभा के कोषाध्यक्ष थे। कोला के पुत्र बेलका ने इस मंदिर को 1448 में बनवाया था तथा जिन सागर सूरी द्वारा इस मंदिर में शांतिनाथ की प्रतिष्ठा कराई गई थी।[15]

इस इमारत वस्तुत: महाराणा कुंभा की चंवरी (शादी मंडप) थी अत: इसका नाम शृंगार चंवरी पड़ा। जहाँ तक शृंगार रस का प्रश्न है वह यहाँ के मूर्ति शिल्प में दिखाई देता है। इस इमारत के आलों (कपाट) पर जैन मुनियो के नाम अंकित हैं। जिससे ज्ञात होता है कि बाद में इसे जैन मंदिर में परिवर्तित कर दिया गया था।[16]

जहाँ तक धर्म का प्रश्न है मेवाड़ राजवंश सहिष्णु कहा जा सकता है। इसके पीछे राजनैतिक कारण विद्यमान थे। महाराणा स्वयं को सूर्यवंशी बताते थे, उनका राजवंश शैव तथा उनके कुलदेव एकलिंग (शिव) भगवान थे, उन्होंने विष्णु मंदिरों का निर्माण करवाया था तथा जैन मंदिरों के निर्माण हेतु मंत्रियों को सहायता प्रदान करते थे। शाक्त, महाराणाओं की उदारता से प्रसन्न थे। राजनीतिक चक्रव्यूहों के निकट सम्पर्क में रहते-रहते मीरां में भी प्रर्याप्त राजनीतिक समझ पैदा हो चुकी थी। वह धर्म का बेहतर उपयोग करना जानती थी। कृष्ण भक्ति का उपयोग उसने न केवल सती प्रथा जैसी बुराइयों से लड़ने में ही किया वरन् इसके माध्यम से मीरां ने स्वयं को लोक के साथ भी जोड़ा। तत्कालीन ज़रूरतों को देखते हुए मीरां का कृष्ण भक्त होना ही पर्याप्त था अत: उसने स्वयं को किसी धर्म-सम्प्रदाय के साथ जोड़ना उचित नहीं समझा। अगर मेवाड़ के आंतरिक द्वन्द्व में राठौड़ विजयी रहे होते तब भी यह राजनीतिक दृष्टि से अदूरदर्शिता पूर्ण कदम था। जहाँ तक मीरां पर विभिन्न धर्म सम्प्रदायों के प्रभाव का प्रश्न है यह स्वभाविक था। मेवाड़ के धार्मिक वातावरण को देखते हुए नाथों, जैनों से लेकर शैव - वैष्णवों तक के प्रभाव यदि मीरां में दिखाई दें, तो इसे आश्चर्य नहीं समझना चाहिए। मीरां का मूल उद्देश्य धर्म के माधयम से स्त्री अधिकारों की चेतना पैदा करना था, न कि किसी शास्त्रीय मत का अनुसरण करना।

जहाँ तक चित्तौड़ दुर्ग का प्रश्न है, कुछ किस्मत वाले धानी-मानी अथवा राजनैतिक व धार्मिक दृष्टि से प्रभावशाली लोग ही इसमें प्रवेश पा सकते थे। इनमें से भी महाराणा महल में केवल चंद लोग ही प्रवेश पाते थे। महल के आंतरिक भागों में तो केवल प्रभावशाली सामंत व सगे-सम्बंधी ही जा सकते थे। इस आधार पर मीरां का जनता से वास्तविक सम्पर्क दुर्ग त्यागने के बाद ही स्थापित हुआ। इससे पहले तक लोगों का मीरां से परिचय तो था किंतु प्यार का विकास बाद में ही हुआ। इससे पहले मीरां की चर्चा केवल चित्तौड़ दुर्ग के पनघटों तथा मंदिरों तक ही सीमित थी।[17]

मीरां मंदिर के ठीक सामने एक संत की छतरी है। कहा जाता है कि यह छतरी रैदास की है तथा वे मीरां के गुरु थे। हमें ज्ञात है कि महारानियों ने स्वयं को प्रदान किए गए गांवों के राजस्व से कुछ निर्माण कार्य करवाए हैं। मीरां की एक सास जो कि झाला सामंत की बेटी थी किसी निर्गुण पंथी साधु की भक्त थी। संभव है इस

छतरी का निर्माण अपने गुरु की स्मृति में उसी झाली रानी ने करवाया हो। मीरां के साथ इस छतरी के आधार पर रैदास का सम्बंध स्थापित करना गलत निष्कर्ष होगा।[18]

चित्तौड़ में जब गुहिल वंश की स्थापना हुई थी तब चित्तौड़ का शासक वर्ग लोक के अधिक नजदीक था। धीरे-धीरे वहाँ शास्त्रीयता का प्रभाव बढता गया एवं शक्ति में वृद्वि के साथ ही वहां का शासक वर्ग लोक से दूर तथा शास्त्र तथा ब्राह्मणों के नजदीक होते गए। जहाँ आरंभिक शिलालेखों पर साधारण पशु आकृतियाँ एवं चिह्न होत थे वहीं परवर्ती शिलालेख क्लिष्ट ज्योतिषीय चिह्नों से युक्त होते गए। इस बात से स्पष्ट होता है कि सत्ता प्राप्ति के साथ ही धीरे-धीरे मेवाड़ में कर्म कांडियों का महत्व बढ़ता गया एवं शासक वर्ग शास्त्र के नजदीक होता गया।[19] मीरां की इन्हीं कर्मकांडियों तथा शास्त्र के विरुद्ध लड़ाई थी। उसने धर्म को पुनः लोक से जोड़ने का प्रयास किया एवं कर्मकांडियों से स्वयं को दूर रखा।

मीरां पर आरोप लगाया जाता है कि उसके पदों में सामाजिक चिंताओं का अभाव है। वास्तविकता यह है कि मीरां का संघर्ष अन्य भक्त कवियों के समान सीधा-सीधा समाज से न होकर उस सामंत वर्ग से था जो स्त्री-स्वतंत्रता को प्रतिबंधित कर कुल मर्यादा का अंकुश खड़ा करना चाहता था। उसका अधिकांश जीवन दुर्ग की सीमित सीमाओं में कैद था। उससे किसी बड़े सामाजिक आंदोलन की अपेक्षा करना मीरां एवं मध्यकालीन स्त्रियों के साथ ज्यादती करना होगी।

पुरातत्ववेत्ता चित्तौड़ तथा मेवाड़ के अन्य क्षेत्रों में मंदिरों, मूर्तियों, मठों के बाहुल्य को देखते हुए इस क्षेत्र को हिन्दू संस्कृति का गढ़ मानते हैं। एक-दो फारसी शिलालेख तथा एक-दो मुस्लिम विजेताओं के निर्माण कार्यों के अलावा पूरे मेवाड़ में मुस्लिम अधिपत्य के कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिलते है। इस आधार पर मेवाड़ का पूरा क्षेत्र कभी भी मुस्लिम संस्कृति के सीधे सम्पर्क में नहीं आया।[20] यहाँ हिंदू-मुस्लिम सांस्कृतिक समन्वय की वैसी कोई समस्या नहीं थी, जैसा कि देश के अन्य भागों में। जाहिर है मीरां के काव्य में भी ऐसी किसी चिंता को ढूंढ़ना अनुचित होगा।

मीरां का बचपन भले ही मेड़ता में बीता हो किंतु उसका व्यक्तित्व निर्माण चित्तौड़ में ही होता है। लोक में प्रचलित किवदंतियों के अलावा ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है जिससे पता चलता हो कि मीरां की कृष्ण भक्ति उसके बचपन का अनुराग था। केवल वैष्णव ग्रंथों तथा ब्रह्मणों द्वारा गढ़ी गई किवदंतियों में ही मीरां के

शिलालेख (क्रमांक 01)

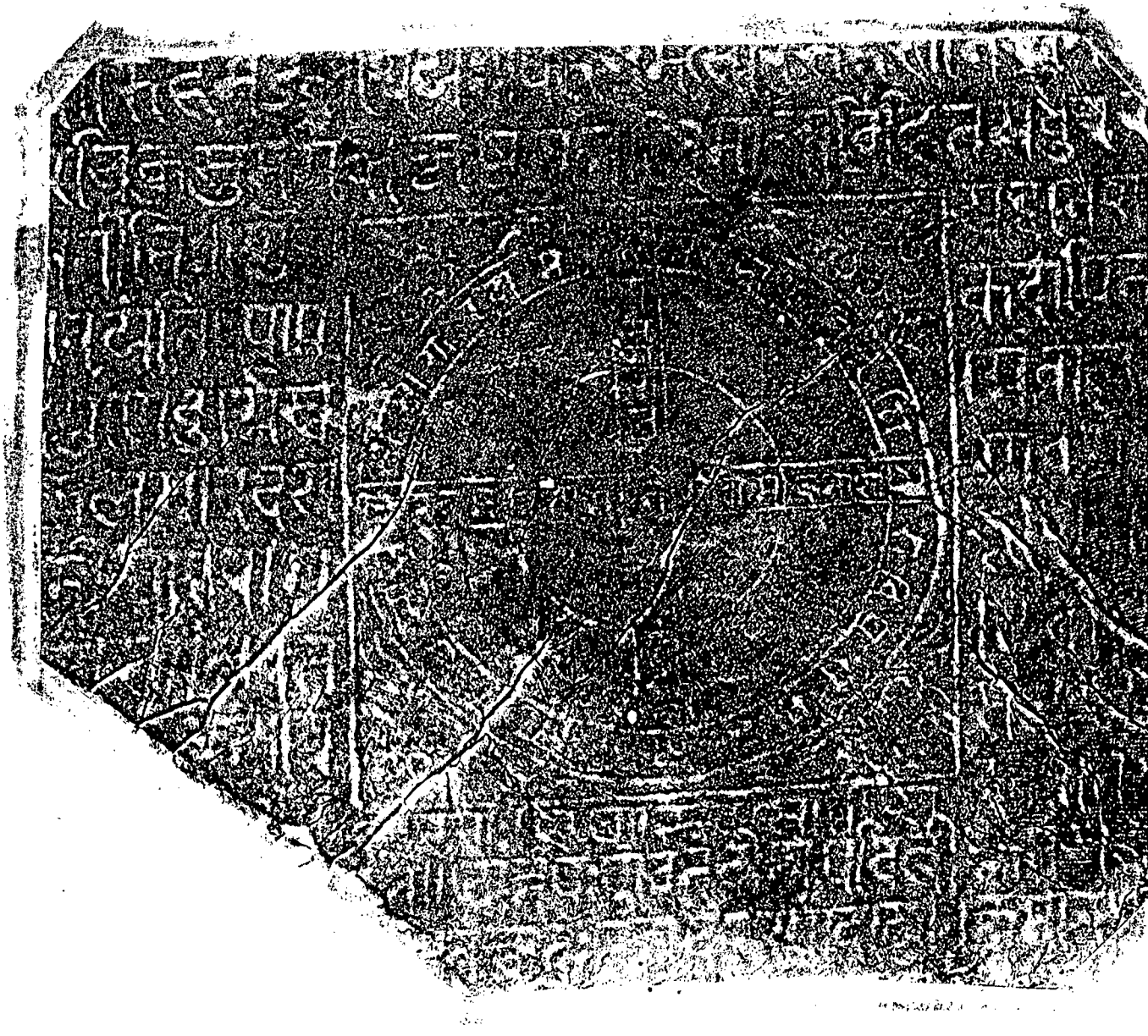

चालुक्य नरेश कुमारपाल का शिलालेख
चित्तौड़ दुर्ग

शिलालेख (क्रमांक 02)

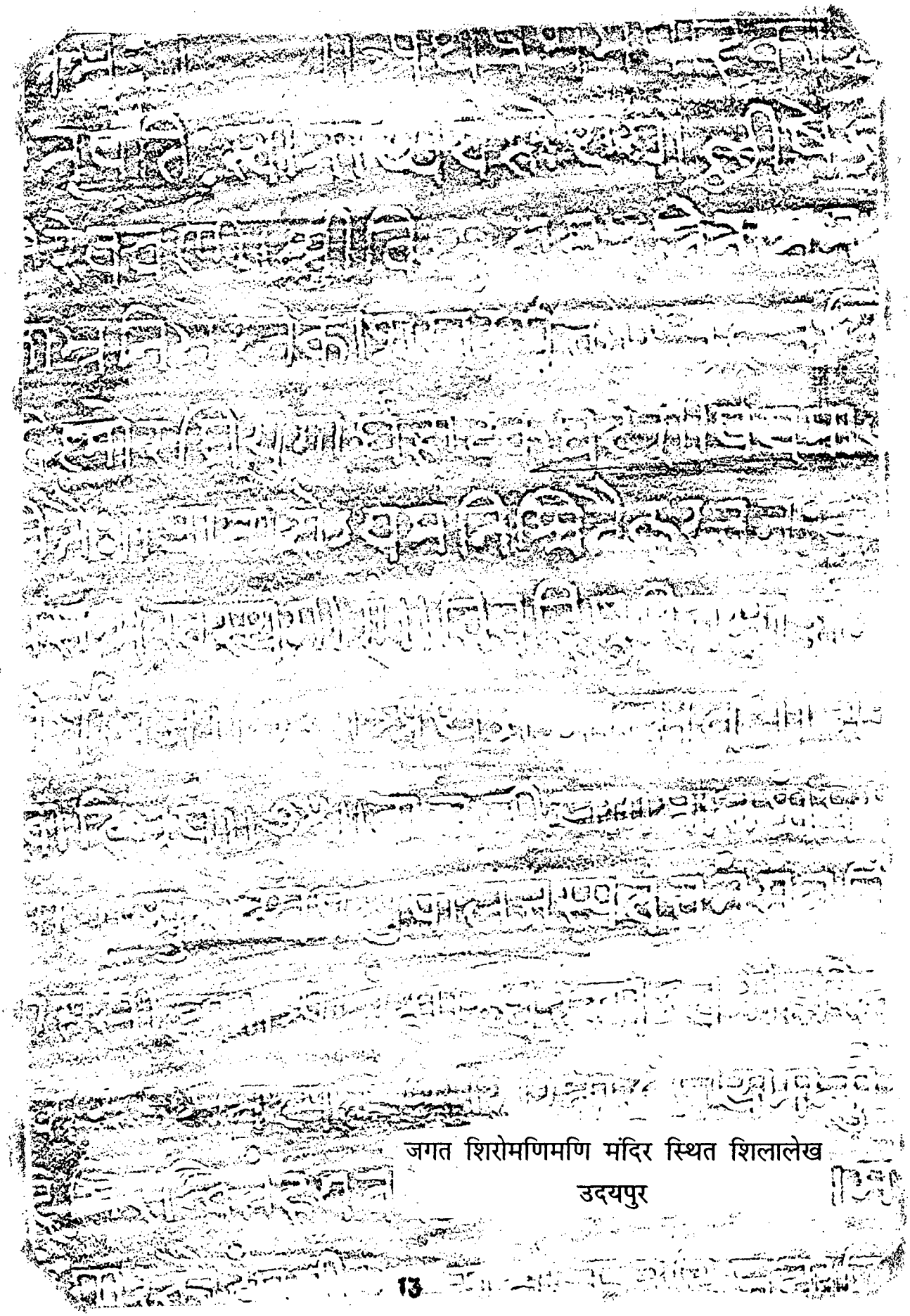

जगत शिरोमणिमणि मंदिर स्थित शिलालेख

उदयपुर

शिलालेख (क्रमांक 03)

महाराणा मोकल का शिलालेख
चित्तौड़ दुर्ग

शिलालेख (क्रमांक 04)

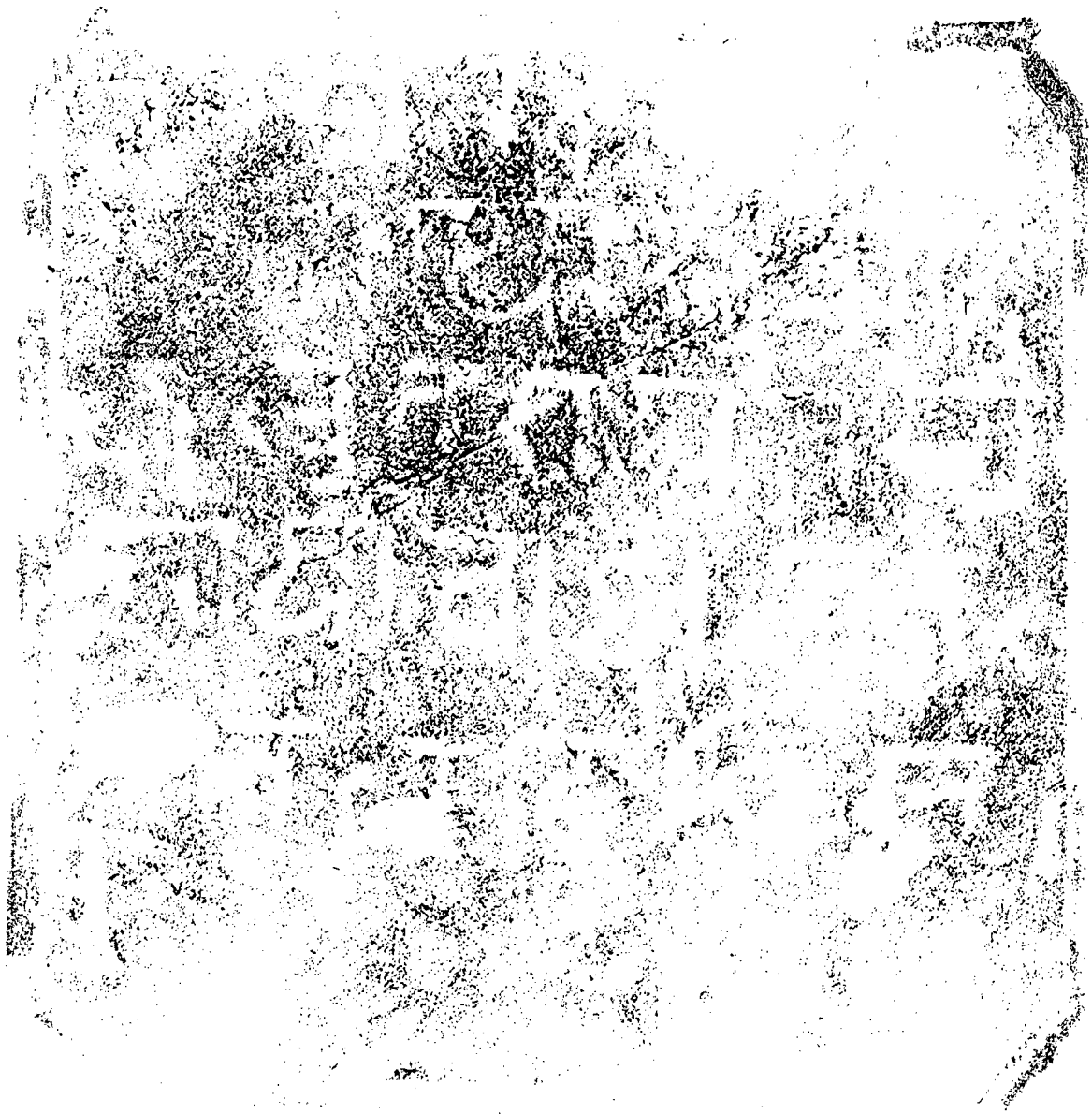

सती स्तम्भ लेख, राजकीय संग्रहालय
उदयपुर

जहाजपुर अभिलेख, राजकीय संग्राहलय
उदयपुर

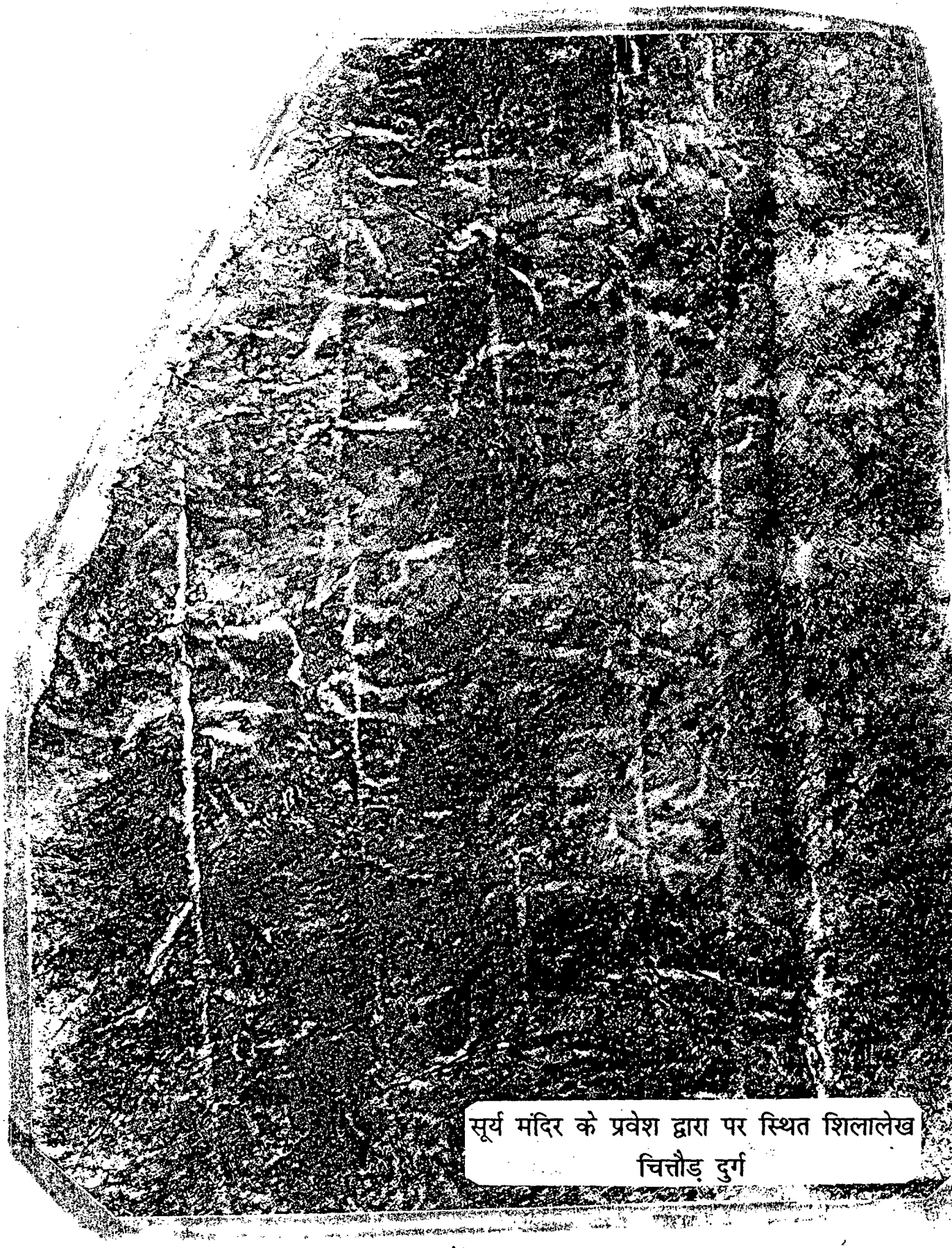

सूर्य मंदिर के प्रवेश द्वारा पर स्थित शिलालेख
चित्तौड़ दुर्ग

शिलालेख (क्रमांक 07)

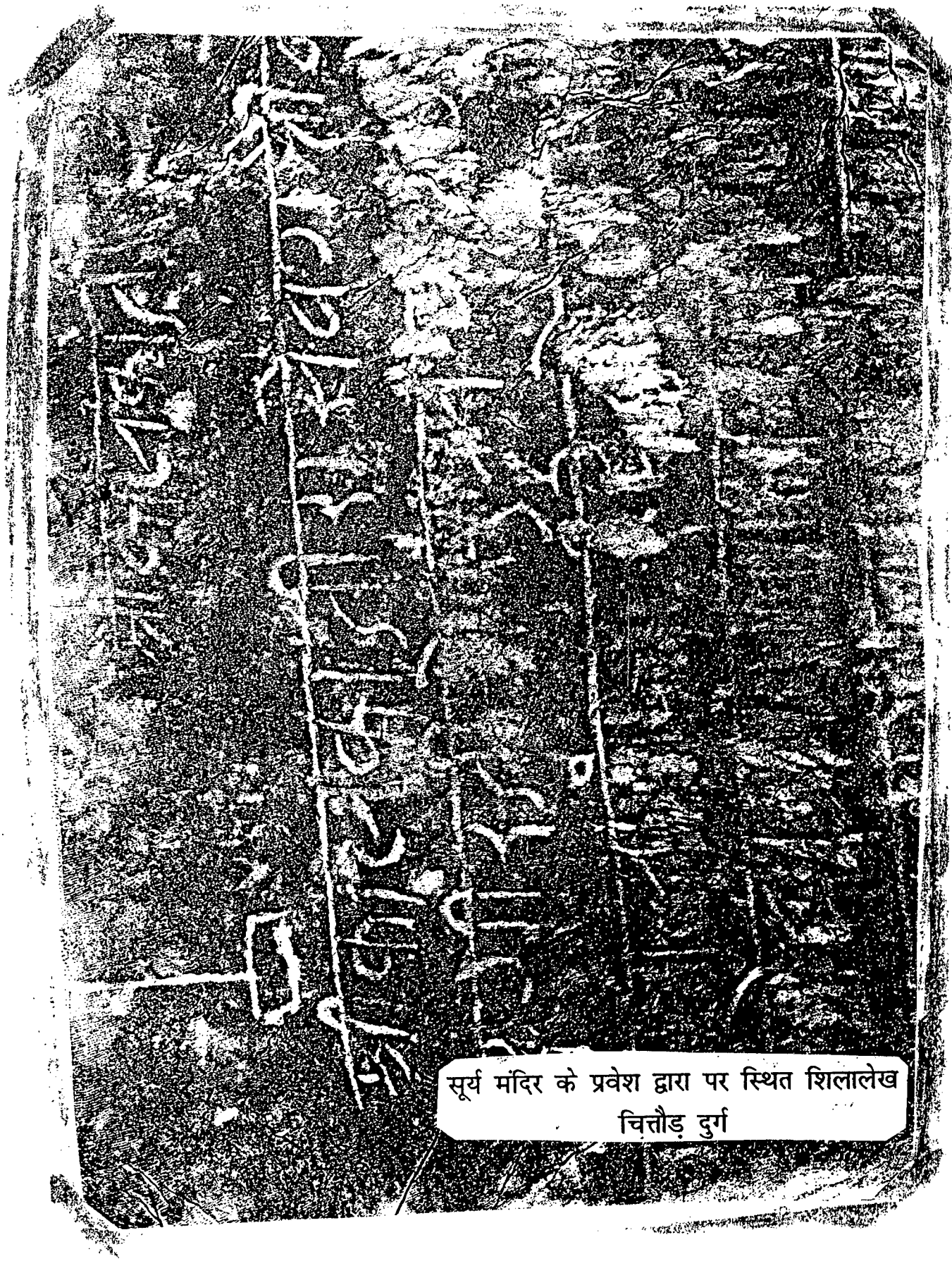

सूर्य मंदिर के प्रवेश द्वारा पर स्थित शिलालेख
चित्तौड़ दुर्ग

शिलालेख (क्रमांक 08)

सूर्य मंदिर के गर्भगृह के निकट स्थित स्तम्भ लेख
चित्तौड़ दुर्ग

शिलालेख (क्रमांक 09)

सूर्य मंदिर स्थित स्तम्भ लेख
चित्तौड़ दुर्ग

शिलालेख (क्रमांक 10)

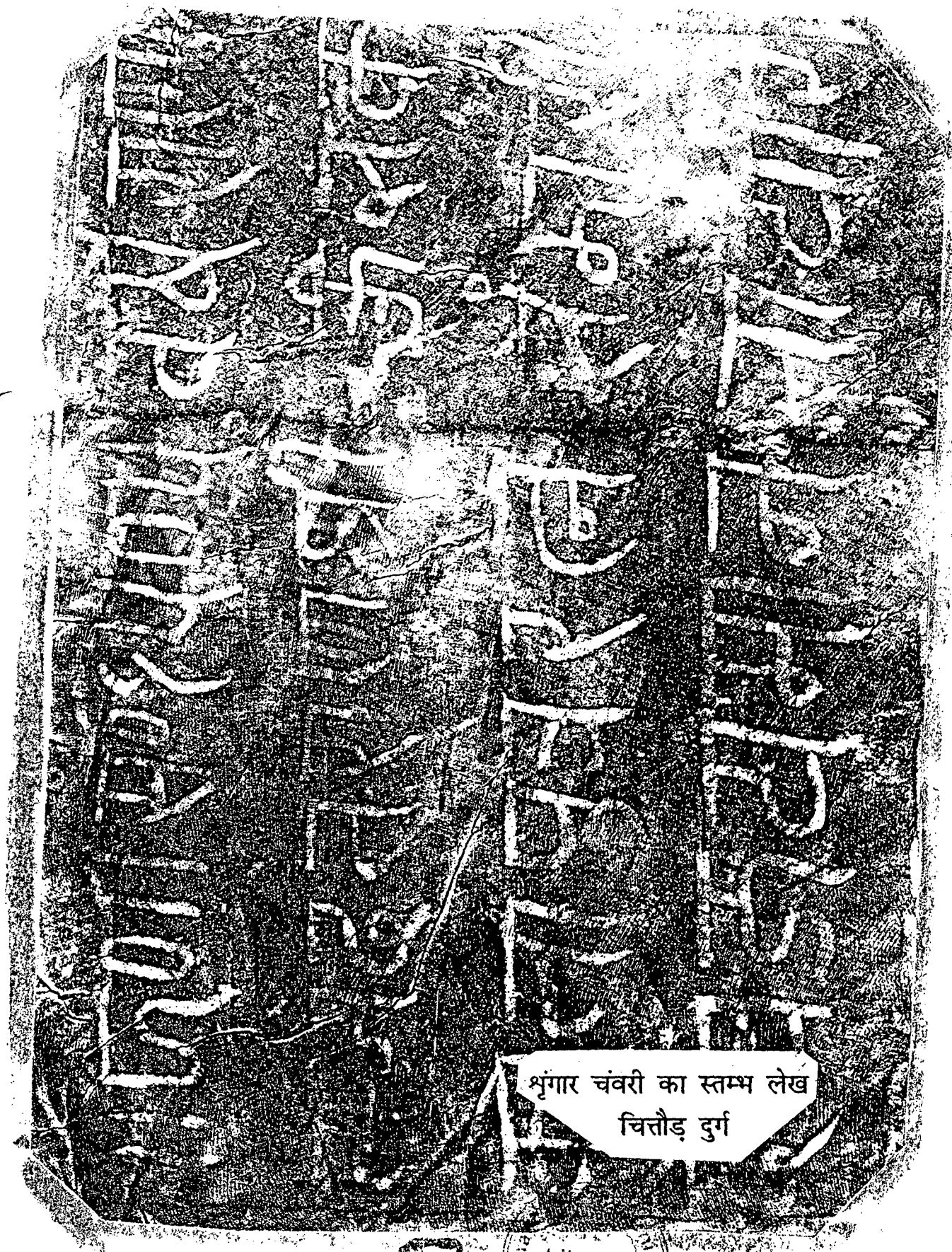

शृंगार चंवरी का स्तम्भ लेख
चित्तौड़ दुर्ग

TH-13585

Jawaharlal Nehru University Library

शिलालेख (क्रमांक 11)

शृंगार चंवरी स्थित लघु स्तम्भ लेख
चित्तौड़ दुर्ग

शिलालेख (क्रमांक 12)

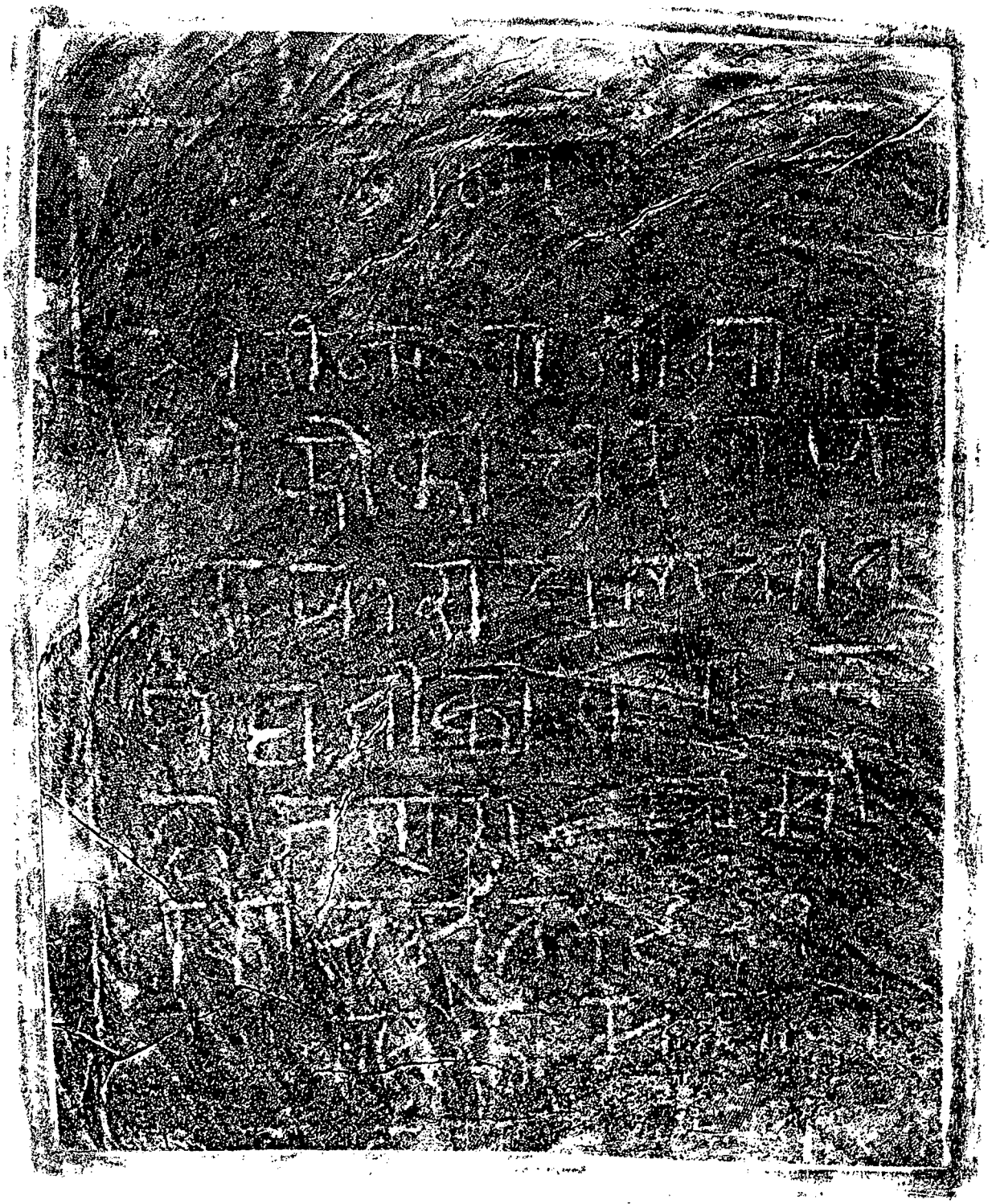

नाभा निवास का शिलालेख, गलता
जयपुर

शिलालेख (क्रमांक 13)

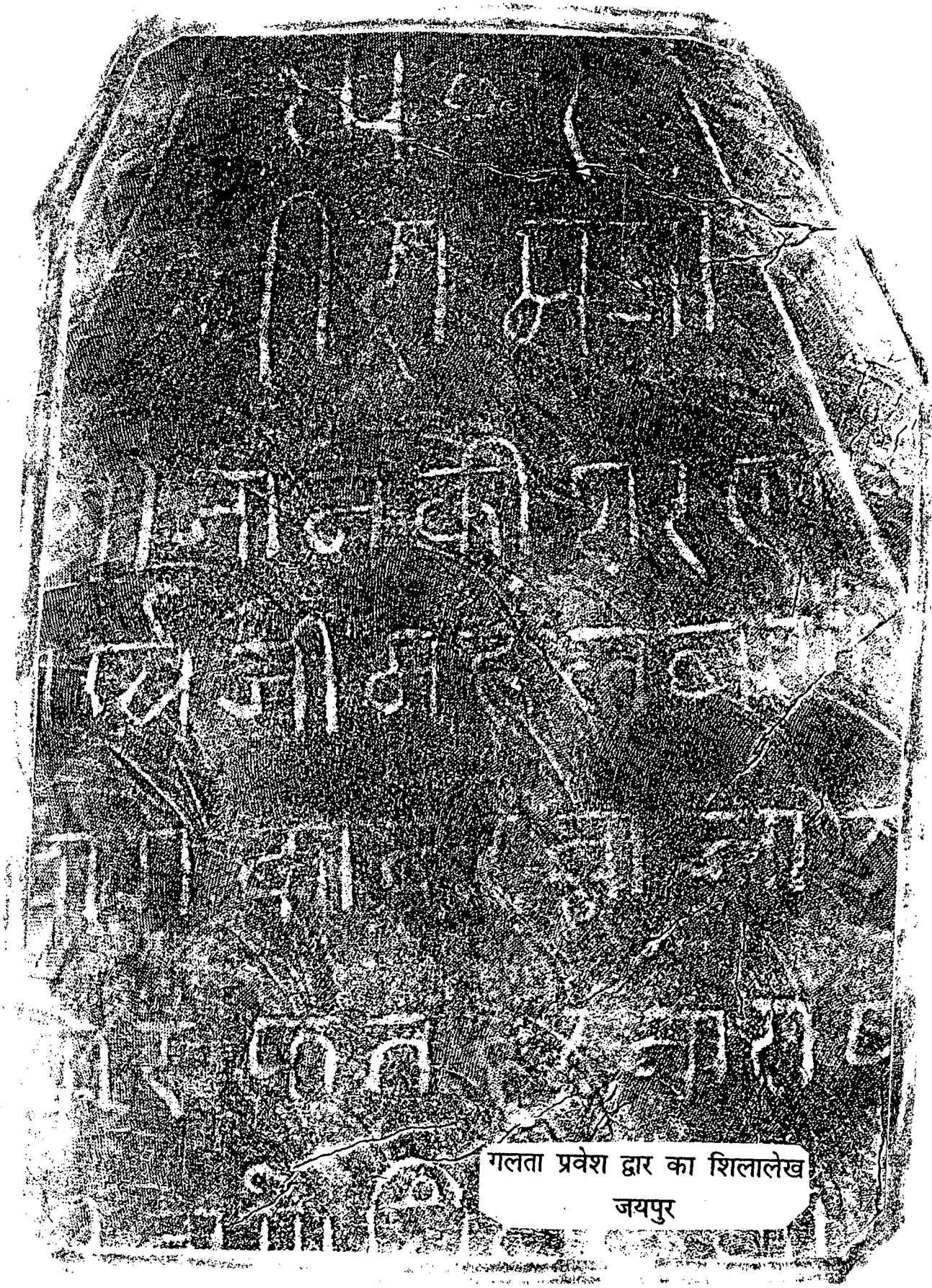

गलता प्रवेश द्वार का शिलालेख
जयपुर

शिलालेख (क्रमांक 14)

सती कुण्ड के निकट स्थित शिलालेख
चित्तौड़ दुर्ग

शैलचित्र (क्रमांक 01)

सूर्य और चन्द्रमा, सूर्य मंदिर
चित्तौड़ दुर्ग

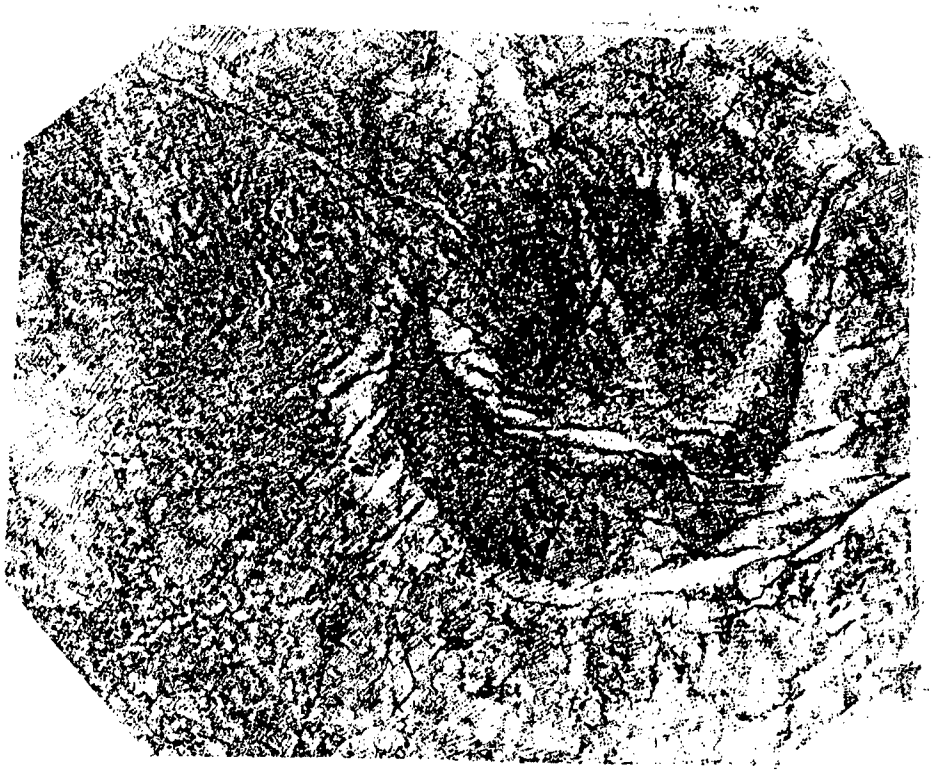

शैलचित्र (क्रमांक 02)

बछड़े को दूध पिलाती गाय, सूर्य मंदिर
चित्तौड़ दुर्ग

शैलचित्र (क्रमांक 03)

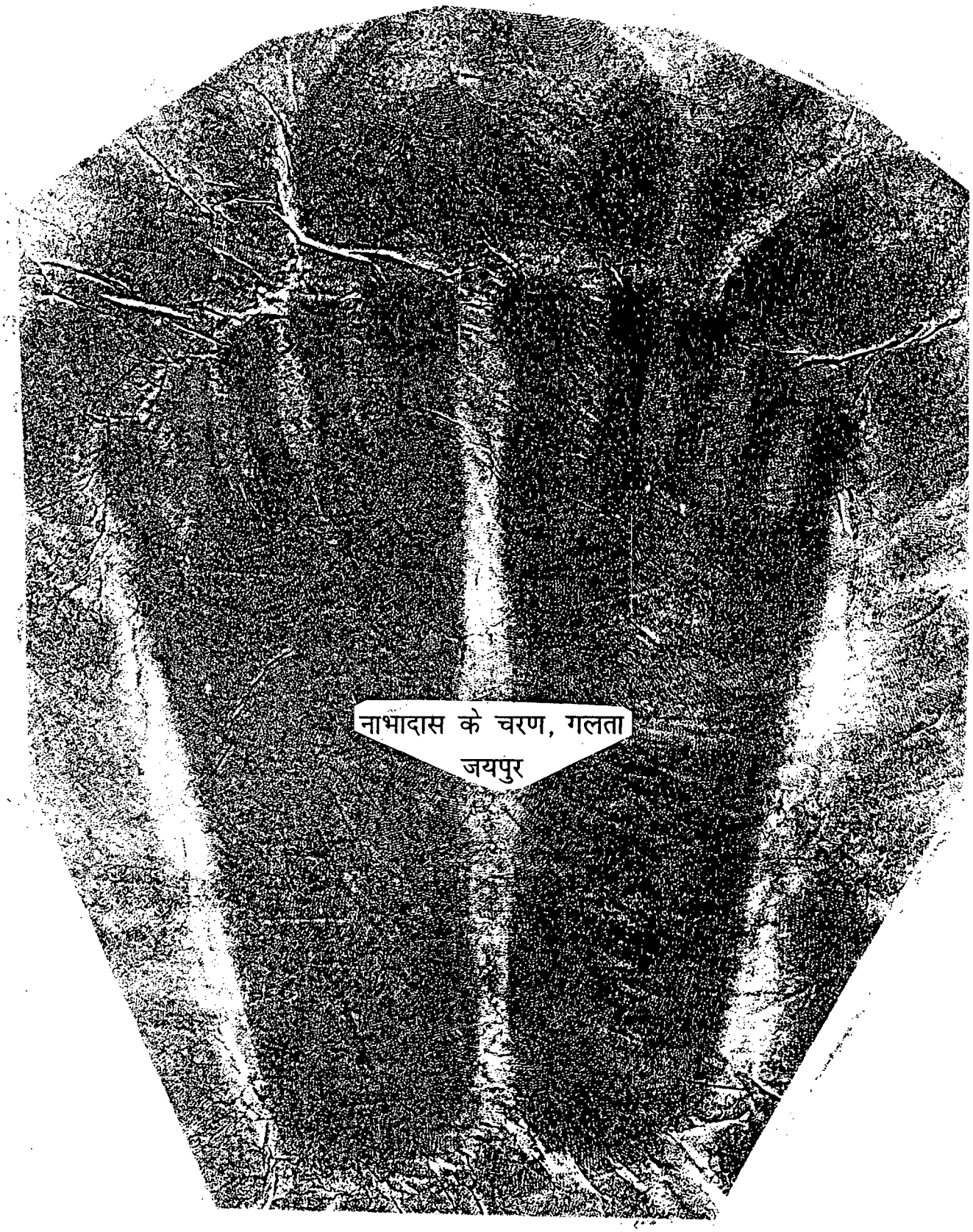

नाभादास के चरण, गलता
जयपुर

बचपन से ही कृष्णानुरागी होने का संकेत मिलता है। ऐतिहासिक विश्लेषण इसके विपरीत ही पड़ता है।

मेड़ता स्थित मीरां मंदिर जिसे निज मंदिर कहा जाता है अब पुरातात्विक दृष्टि से अनुपयोगी वस्तु रह गया है। नवीनीकरण के नाम पर समस्त पुरातात्विक साक्ष्य नष्ट कर दिए गए हैं एवं उनके स्थान पर सफेद मार्बल जड़ दी गई है। इस मंदिर के पीछे दूदा महल है। राव दूदा मीरां के दादा थे। इस दूदा महल में वर्तमान में एक सरकारी स्कूल चलता है। कमरों के निर्माण की प्रक्रिया में पुरातात्विक साक्ष्यों को बतौर ईट-पत्थर चुनाई के काम में ले लिया गया हैं। सौभाग्य से मेड़ता के मीरां महल आज भी उपेक्षित किंतु जीवित हैं। मीरां की लोकप्रियता के कारण मेड़ता की स्थानीय जनता जिन्हें मीरां महल कहती हैं, वस्तुतः वह मेड़ता के सामंत का छोटा मोटा महल था। चित्तौड़ दुर्ग के विशाल महलों की तुलना में मेड़ता का यह महल साधारण प्रतीत होता है। इससे मीरां के ससुराल पक्ष एवं पीहर पक्ष वालों की हैसियत में विशाल अंतर की कल्पना की जा सकती है। इस महल के पीछे तालाब तथा पनघट बना हुआ है। इस तालाब में आज भी बहुत सारे कमल-दल खिलते हैं। पनघट से अनुमान लगाया जा सकता है कि यह महल मेड़ता का केन्द्र बिन्दु था। मेवाड़ के सफेद पत्थरों के विपरीत यह महल स्थानीय लाल पत्थरों से बना है। महलों की बनावट में भी कुछ भेद हैं। महल के बाहर एक खंडहरनुमा मंदिर के अवशेष प्राप्त हुए हैं, तथा इसके पास ही पोल एवं दरीखाना स्थित हैं।[21] चित्तौड के विशाल महलों की तुलना में मेड़ता का यह महल भले ही साधारण प्रतीत होता हो किंतु ध्यान रखना चाहिए कि जिस समय इन महलों का निर्माण हुआ था, साधारण जनता घास-फूस तथा गारे-मिट्टी के घरों में रहा करती थी। मीरां चाहे कुड़की रहीं हो बाजोली रहीं हो अथवा मेड़ता उसका निवास स्थल इससे अधिक भव्य नहीं रहा होगा। जहाँ तक मेड़ता का प्रश्न है, मेवाड़ की तुलना में सूखा प्रदेश है किन्तु यह मारवाड़ राज्य के श्रेष्ठतम प्रदेशों में से एक था। इसके विपरीत चित्तौड़गढ़ तालाबों व झरनों का अत्यंत हरा-भरा नगर था, जहाँ वर्षा के दिनों में मूसलाधार वर्षा होती थी एवं आसपास के घने जंगलो में खतरनाक जंगली जानवर विचरण किया करते थे। मीरां का व्यक्तित्व निर्माण इसी हरे-भरे प्रदेश में हुआ था। इस प्रदेश का चप्पा-चप्पा मीरां की मधुर स्मृतियों से भरा पड़ा है।

मिथिला प्रदेश के मंदिर स्थापत्य में नेपाली स्थापत्य से साम्य देखने को मिलता है। दरभंगा के मनकामेश्वर मंदिर एवं कालिका मंदिर का स्थापत्य काठमांडू अथवा जनकपुर के मंदिरों से बहुत कुछ मिलता है। ठीक इसी प्रकार आमेर तथा जयपुर के मंदिरों का स्थापत्य मुगल स्थापत्य से उल्लेखनीय साम्यता रखता है। स्थापत्य की इस साम्यता से नेपाल तथा मिथिला एवं जयपुर व दिल्ली-आगरा प्रदेश के निकट संपर्क का प्रमाण मिलता है। ठीक इसी प्रकार चित्तौड़ दुर्ग के मंदिरों व महलों की स्थापत्य कला का अध्ययन करें तो यह स्थापत्य एक विशिष्ट स्थापत्य की झलक प्रस्तुत करता है जो शेष राजपूताने के मंदिर व भवन स्थापत्य ने बहुत कुछ भिन्न प्रकार है। जहां अन्य प्रदेशों के स्थापत्य में मिश्रण के संकेत मिलते हैं वहीं चित्तौड़ दुर्ग व मेवाड़ के मंदिर स्थापत्य से पता चलता है कि मेवाड़ के स्थापत्य के अपनी शुद्धता बनाए रखी है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि मुगल एवं सल्तनत संस्कृति का प्रभाव मेवाड़ के समाज पर अन्य प्रदेशों की तुलना में प्राय: कम रहा है। निश्चय ही सांस्कृतिक समन्वय की वैसी कोई समस्या मेवाड़ में नहीं थी जैसे कि देश के अन्य भागों में यही कारण है कि मीरां के काव्य में स्त्री चेतना व संवेदना ही अधिक पाई जाती है। कबीर के काव्य में जो सामाजिक चिन्ताएं दिखाई देती हैं उसे मीरां के काव्य में ढूंढ़ना मीरां के साथ अन्याय हैं।

चित्तौड़ दुर्ग के अवलोकन से यह बात स्पष्ट होती है कि महलों की अपेक्षा मंदिरों व स्मारकों में मूर्ति शिल्प का उत्कृष्ट नमूना अधिक देखने को मिलता है। इसका कारण साफ था कि मंदिर व स्मारक सार्वजनिक स्थल पर हुआ करते थे। जहां प्रजाजनों का आवागमन लगा रहता था। अत: मीरां द्वारा मंदिर परिसर में अपनी गतिविधियों को बढ़ाना लोक के साथ संपर्क बढ़ाने तथा प्रजाजनों से सीधे संपर्क में आने की रणनीति का हिस्सा था। नि:संदेह प्रजाजनों के साथ मंदिर परिसर में ईश्वर की आराधना उसे लोकप्रिय बना रही थी। इस प्रकार मंदिरों महलों एवं शिलालेखों के अध्ययन से मीरां के जीवन एवं समाज से संबंधित अनेक महत्वपूर्ण जानकारियां प्राप्त होती है।

संदर्भः

1. कविराजा श्यामलदास, वीर विनोद (भाग-2), पृ.-01
2. मीरां मंदिर, चित्तौड़ दुर्ग, चित्र-68, 72
3. गौवर्द्धनधर, राजकीय संग्रहालय, बीकानेर, क्रमांक-229
4. चित्तौड़ दुर्ग का पुरातात्विक सर्वेक्षण, फरवरी-2006
5. सती स्तम्भ, राजकीय संग्रहालय, उदयपुर, क्रमांक-53/3
   शिलालेख क्रमांक-04
   चित्र-10
6. सती स्तम्भ, राजकीय संग्रहालय, बीकानेर, क्रमांक-194/1 एवं 2
7. जौहर साका स्मारिका, जौहर स्मृति संस्थान, चित्तौड़, 1997
8. जहाजपुर अभिलेख, राजकीय संग्रहालय, उदयपुर, क्रमांक-18
   शिलालेख क्रमांक-05
   चित्र-11
9. सती स्तम्भ, चंदेरी दुर्ग, चंदेरी (मध्य प्रदेश)
10. विजय (कीर्ति) स्तम्भ, चित्तौड़ दुर्ग, चित्र-69
11. कुमारपाल, जगत शिरोमणि एवं मोकल का शिलालेख, शिलालेख क्रमांक-01, 02, 03
12. मीरां महल, कुंभा महल परिसर, चित्तौड़ दुर्ग, चित्र-62, 63, 65, 66, 73, 76
13. प्रवेश द्वार शिलालेख, सूर्य मंदिर, चित्तौड़ दुर्ग, शिलालेख क्रमांक-06, 07
14. गर्भगृह निकट लेख एवं स्तम्भ लेख, सूर्य मंदिर, चित्तौड़ दुर्ग, क्रमांक-08, 09
15. स्तम्भ लेख, श्रृंगार चंवरी, चित्तौड़ दुर्ग, शिलालेख क्रमांक-10
16. लघु स्तम्भ लेख,श्रृंगार चंवरी, चित्तौड़ दुर्ग, शिलालेख क्रमांक-11
    चित्र-75
17. विहंगम दृश्य, चित्तौड़ दुर्ग, चित्र-70
18. रैदास एवं उसके चरण, रैदास की छतरी, चित्तौड़ दुर्ग, चित्र-54, 47
19. मोकल का शिलालेख, समिद्धेश्वर मंदिर, चित्तौड़ दुर्ग, शिलालेख क्रमांक-01
    शलाचित्र, सूय एवं चांद तथा बछड़े को दूध पिलाती गाय, सूर्य मंदिर, शैलचित्र क्रमांक-01, 02
20. फारसी अभिलेख, राजकीय संग्रहालय, उदयपुर, चित्र-05
21. बाहरी भाग, मीरां महल, मेड़ता, चित्र-71

अध्याय दो

मूर्ति शिल्प

(पुरातात्विक स्रोत सामग्री)

अध्याय दो

मूर्ति शिल्प

(पुरातात्विक स्रोत सामग्री)

मीरां युग के मूर्ति शिल्प के अध्ययन से न केवल मीरां के पदों को समझने में मदद मिलती है वरन् उस युग की सामाजिक चिंताओं व युगीन मानसिकता के अध्ययन में भी सहायता प्राप्त होती है। चित्तौड़ दुर्ग परिसर में स्थित विभिन्न मंदिरों जिसमें मीरां का मंदिर भी शामिल है, मूर्तिशिल्प तथा उस युग के अन्य मंदिरों के मूर्तिशिल्प के अध्ययन से हमे मीरां के युग व जीवन सम्बंधी महत्वपूर्ण जानकारियाँ प्राप्त होती हैं। मीरां के पद शुचितावादियों के लिए एक समस्या खड़ी कर देते हैं। मीरां को निश्चित तौर पर किसी शास्त्रीय भक्त परम्परा में वर्गीकृत करना मुश्किल हो जाता है। मीरां भक्त तो थी पर वैसी भक्त न थी जैसे कि उस युग के अन्य भक्त हुआ करते थे। मीरां की भक्ति उसकी व्यक्तिगत एवं राजनीतिक जरूरत थी। ऐसे में मीरां ने उस युग में प्रचलित भक्ति के सरलतम रूप को चुना। तत्कालीन मूर्ति शिल्प हमें मीरां की भक्ति का स्वरूप और उस युग की भक्ति के स्वरूप को समझने में मदद करता है। साथ ही इन मूर्तियों के अध्ययन से उस युग के आचार-विचार, व्यवहार, रहन-सहन आदि की जानकारियाँ भी मिलती हैं।

उस युग की मूर्तियों में उत्कीर्ण आकृतियों में प्राय: निर्वस्त्र नायिकाएं मिलना हैं। स्वभाविक है क्योंकि भारत गर्म जलवायु वाला प्रदेश है इसलिए आरंभ से ही कम वस्त्र पहनना यहां की सांस्कृतिक विशेषता रही है। मीरां का समकालीन बाबर भी इस बात का उल्लेख करता है। तत्कालीन मूर्ति शिल्प भी इसका पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत करता है। प्राय: स्त्रियाँ कटिप्रदेश को छोड़कर शरीर के अन्य किसी हिस्से पर वस्त्र धारण नहीं करती थीं और आभूषणों को बहुतायत में उपयोग किया जाता था। ठीक इसके विपरीत ठण्डे प्रदेशों में ठण्ड से बचने के लिए वस्त्रों को बहुतायत प्रयोग में लाया जाता है। परिणामस्वरूप अपने सांस्कृतिक प्रतिमानों के अनुरूप पाश्चात्य विद्वानों ने भारत के मूर्तिशिल्प को अश्लील बताया। यही आरोप मेवाड़, मारवाड़, गुजरात व मालवा के मूर्तिशिल्प पर भी लगाया जाता है। भारतीय सांस्कृतिक प्रतिमानों के अनुरूप देवताओं को नग्न एवं कामुक मुद्राओं में उत्कीर्ण करना अश्लीलता नहीं माना जाता था। उस पूरे प्रदेश जिससे मीरां सम्पर्क में थी, की सांस्कृतिक विशेषताओं का अध्ययन करें तो स्पष्ट

होता है कि स्त्री-पुरूष तथा देवताओं की नग्नता को न तो किसी प्रकार की अश्लीलता समझा जाता था न ही ईश्वर से काम निवेदन को हेय माना जाता था।[1] मीरां का काम निवेदन भी उस युग की भक्ति का सामान्य हिस्सा होकर युग की सांस्कृतिक विशेषता था।

बुंदेलखंड एवं मालवा की सीमा पर स्थित चंदेरी नगर से प्राप्त 11वीं एवं 12वीं सदी की गजलक्ष्मी, गरूड़ारूढ़ वैष्णवी, सरस्वती की मूर्तियाँ हो अथवा त्रिनेत्र शिव की नग्न प्रतिमा, शिवा, कात्यायनी आदि की मूर्तियाँ, सभी नग्न हैं। यहीं पर इसी समय की मिथुन मुद्रा की मूर्ति मिली है साथ ही अप्सराओं की मूर्तियाँ भी मिली हैं। अप्सराओं को देवी तुल्य सम्मान प्राप्त था एवं कई अवसरों पर उनकी पूजा होती थी।[2] गुजरात एवं मारवाड के अनेक स्थानों से भी ऐसी ही मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। राजकीय संग्रहालय जोधपुर में देवी प्रतिमाएँ तथा अन्य मूर्तियाँ इसी प्रकार की नग्न मूर्तियाँ हैं। राजकीय संग्रहालय बीकानेर में 10वीं-11वीं सदी की जैन सरस्वती की मूर्ति प्राप्त हुई है। यह मूर्ति भी अनावृत है।[3] नागदा से प्राप्त 11वीं-12वीं सदी की मूर्तियाँ जिनमें लक्ष्मी, यामा, सुरसुन्दरी, सूर्य, अग्नि, लक्ष्मी नारायण, रूद्र, पार्श्वनाथ, चंडिका तथा वैष्णवी की मूर्तियाँ प्रमुख हैं, नग्न कही जा सकती हैं। इसी प्रकार जगत तथा नागदा से प्राप्त 15वीं 16वीं सदी की मूर्तियाँ जिसमें विष्णु, सरस्वती, इन्द्र, वैष्णवी देवी व नृत्य सरस्वती की मूर्तियाँ प्रमुख हैं, नग्न मूर्तियाँ कही जा सकती हैं।[4] राजकीय संग्रहालय उदयपुर से प्राप्त 11वीं से 16वीं सदी तक की ब्रह्मणी, शिव-पार्वती, लक्ष्मी, क्षेमकरी, जैन पदमावती, सुरसुन्दरी आदि मूर्तियाँ भी नग्न ही हैं। ये समस्त मूर्तियाँ मेवाड़ के विभिन्न प्रदेशों कल्याणपुर, जगत, नागदा आदि से एकत्र की गई हैं। संग्रहालय में मुरलीधर कृष्ण की मूर्ति मिलती है। पुरातत्व वेताओं ने इसका समय 18वीं सदी निर्धारित किया है। इससे स्पष्ट होता है कि मेवाड़ व आसपास के प्रदेशों में मीरां से पूर्व कृष्ण भक्ति का प्रचलन नहीं था।[5]

मेवाड़ तथा समीपवर्ती प्रदेशों से प्राप्त इन मूर्तियों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि कम वस्त्र धारण करना मीरां के युग की विशेषता थी तथा काम प्रसंगों व काम निवेदनों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। चित्तौड़ की राजनीति को देखते हुए कहा जा सकता है कि राजमहल, मीरां की कृष्ण भक्ति को नई परम्परा मानकर शंका की दृष्टि से अवश्य देखता रहा होगा किन्तु मीरां द्वारा कृष्ण के प्रति काम निवेदन

को व्यापक लोक स्वीकृति प्राप्त थी। इससे इस निष्कर्ष तक पहुँचना भी सही प्रतीत होता है कि राजमहल द्वारा मीरां का उत्पीड़न लोक मर्यादा का प्रश्न ज्यादा नहीं था वरन् मर्यादा के प्रश्न से कहीं ज्यादा इसके पीछे राजनीतिक स्वार्थ थे। यदि यह मान लिया जाए कि लोक मर्यादा के उल्लंघन के कारण मीरां का उत्पीड़न हुआ तब ऐसी स्थिति में मीरां की छवि एक कृष्णातुर भक्त से ज्यादा नहीं होगी। इसके विपरीत यदि हम मीरां की कृष्ण भक्ति को तत्कालीन सामाजिक-राजनैतिक जरूरतों के सन्दर्भ में विश्लेषित करें तो इस सत्य से परदा उठने लगता है कि राजमहल द्वारा मीरां का विरोध राजनैतिक कारणों से ज्यादा हो रहा था। इन्हीं कारणों में मीरां द्वारा सतीप्रथा का विरोध, कृष्णभक्ति एवं कृष्ण के प्रति काम निवेदन जो मीरां की जेंडर अस्मिता को व्यक्त कर रहा था, सम्मिलित थे। जिसे आगे चलकर मान-मर्यादा के प्रश्नों से जोड़ा गया। परवर्ती काल में विभिन्न किवदंतियों के माध्यम से मान-मर्यादा के प्रश्न को इतना अधिक महत्व दिया गया कि मीरां की छवि धीरे-धीरे एक क्रांतिकारी राजपूत स्त्री से ज्यादा पागल कृष्ण भक्त के रूप में निर्मित हो गई।

मीरां की राजनीतिक व सामाजिक सक्रियता को सीमित करने के उद्देश्य से मीरां की गतिविधियों को लेकर मान-मर्यादा का प्रश्न अवश्य उठाया गया होगा किंन्तु तत्कालीन भक्ति के स्वरूप को देखते हुए यह निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि मीरां की भक्ति को व्यापक लोकस्वीकृति प्राप्त थी जैसा कि मेवाड़ व निकटवर्ती प्रदेशों के मूर्तिशिल्प के अध्ययन से प्रमाणित होता है।

उस युग के मूर्ति-शिल्प के अध्ययन से धीरे-धीरे इस सत्य से भी परदा उठने लगता है कि तत्कालीन समाज ईश्वर को किसी परम शक्ति से ज्यादा, साधारण जन संस्कृति का ही हिस्सा मानता था। चित्तौड़ स्थित मीरां मंदिर में सूर्य को प्रायः उसके दोनों पुत्रों के साथ उत्कीर्ण किया गया है। इसी प्रकार मंदिर की दीवारों पर सूर्य की मूर्ति को पहचानने के लिए भी प्रायः इस पद्धति को काम में लाया जाता था कि यदि मूर्ति के साथ कोई छोटी शिशु आकृति बनी हुई है तब वह सूर्य है अन्यथा कोई अन्य देव। लक्ष्मी को प्रायः एक अमीर स्त्री के रूप में उत्कीर्ण किया गया। एक इतनी अमीर स्त्री जो हाथी तक रखने की क्षमता रखती थी। उल्लेखनीय है कि सामंती युग में हाथी रखना विशेषाधिकार समझा जाता था एवं उसके लिए राज्यादेश प्राप्त किया जाता था। इसी प्रकार विष्णु को एक गंभीर, सुसंस्कृत पुरुष के रूप में उत्खनित किया गया।

शिव-पार्वती को एक ऐसे लोकप्रिय दम्पति के रूप में उत्कीर्ण किया गया है, जिनमें आपस में असीम प्रेम है। और यह तब है, जबकि शिव स्वयं ज्यादा अमीर नहीं है, स्वभाव से भोले एंव फक्कड़ हैं। लक्ष्मी एवं पार्वती की मूर्तियाँ रूप आकार - प्रकार व स्वरूप में एक होते हुए भी उनमें सूक्ष्म अंतर बिद्यमान रहता था। जहाँ लक्ष्मी को सुडौल काया वाली स्त्री के रूप में उत्कीर्ण किया जाता था वहीं पार्वती का पेट मामूली बड़ा बनाया जाता था। इस प्रकार पेट को ध्यान में रखकर भी हम मूर्तियों की पहचान कर सकते थे। निःसंदेह प्रत्येक देव अथवा देवी की मूर्ति विशिष्ट शिल्पगत प्रतिमानों का अनुसरण करते हुए अपना एक विशिष्ट चरित्र रखती थी।[6] मूर्ति विशेष के इसी विशिष्ट चरित्र के आधाार पर भक्त अपने ईश्वर अथवा ईष्ट देव का निर्धारण करता था एवं उस भाव-विशेष के प्रति अपनी भक्ति अर्पित करता था। ऐसे में इस बात की पूरी-पूरी संभावना है कि युगीन एवं समाज की मानसिकता में परिवर्तन के साथ-साथ जहाँ कुछ देव लोकप्रिय हो जाते थे तो कुछ देव हांसिए पर चले जाते थे। मेवाड़ के सन्दर्भ में भी यह इतना ही सत्य है। आरंभ में यहाँ सूर्य पूजा लोकप्रिय थी, धीरे-धीरे इसका स्थान लिंग पूजा ने ले लिया। मीरां ने उस युग की मानसिकता को समझते हुए कृष्ण भक्ति को लोकप्रिय बनाया एवं कृष्ण के चरित्र को अपनी जरूरतों के अनुसार ढाला। उस युग के मूर्ति-शिल्प की प्रमुख विशेषता मूर्तियों की चरित्रगत विशेषता थी एवं मूर्तिपूजा वस्तुतः चरित्र विशेष की आराधना का ही एक स्वरूप था।

मीरां के युग तक आते-आते भक्ति बौद्धिक विमर्श का हिस्सा नहीं रह गई थी। भक्त, भगवान को अपने जैसा एवं स्वयं से विशिष्ट अथवा पृथक नहीं मानता था। भगवान प्रायः समाज का ही हिस्सा हुआ करता था। कभी-कभी तो इन भगवानों की स्वरूप कल्पना में देशी रंग-ढंग तक हावी हो जाता था। बीकानेर स्थित करणी माता का रूप एवं पहनावा स्थानीय स्त्री के पहनावे जैसा ही है।[7] ठीक इसी प्रकार अन्य स्थानों के मूर्तिशिल्प में भी देव मूर्तियों को देशी रंग में ढाल दिया जाता था। इसका अर्थ यही था कि भगवान भक्त से विशिष्ट न होकर उन्हीं में से एक है, यहाँ तक कि रंग-ढंग एवं रूप स्वरूप में भी। जिस प्रकार से समाज के किसी व्यक्ति विशेष के रिश्तेदार-नातेदार होते थे- पुत्र-पुत्रियाँ, स्त्री-श्वसुर एवं माता-पिता आदि। उसी प्रकार ईश्वर के भी अपने नातेदार-रिश्तेदार पुत्र, पत्नी आदि सगे सम्बंधी होते थे। इन सगे-सम्बंधियों के भी विशिष्ट चरित्र होते थे। कुछ प्रसन्नमना थे, तो कुछ गुस्सैल, तो

कुछ गंभीर। जिस प्रकार हमें समाज में चारों तरफ भिन्न-भिन्न चरित्र के लोग मिल जाते हैं, ठीक उसी प्रकार ईश्वरीय चरित्रों में भी उस काल में भिन्नता देखी जा सकती थी। सूर्य मंदिर, चित्तौड़गढ़ में सूर्य मंदिर के पृष्ठभाग की छत पर ब्रह्मा को दाढ़ी युक्त उत्कीर्ण किया गया है। कुंभश्याम मंदिर के शिखर पर गरूढ़ को एक ऐसे अर्द्धमनुष्य पक्षी के रूप में उत्कीर्ण किया गया है, जो संकेत पाते ही उड़ने के लिए उद्धृत है। नि:संदेह मीरां युग के मूर्ति शिल्प के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि मीरां एवं मीरां के युग की भक्ति किसी परम तत्व का विवेचन विश्लेषण न होकर, किसी चरित्र एवं भाव विशेष के प्रति लगाव अथवा भक्ति थी। मीरां की भक्ति भी वस्तुत: कृष्ण के उस चरित्र विशेष के प्रति लगाव ही था, जिसे चाहे कृष्ण भक्ति का नाम दें अथवा कृष्ण के प्रति श्रद्धा कह दें। कृष्ण के ही प्रति मीरां की श्रद्धा अथवा लगाव क्यों था इसका उत्तर पहले ही दिया जा चुका है। नि:सदेंह कृष्ण के उस चरित्र के प्रति मीरां का लगाव उन शुचितावादियों के प्रति विद्रोह भी था जो किसी स्त्री द्वारा अपने पति अथवा प्रेमी के न रहने पर अथवा उसकी उपस्थिति में किसी अन्य पुरूष से प्रेम अथवा विवाह के आग्रह का निषेध करते थे। इसका उद्देश्य एक ही था हर स्थिति में स्त्री को पुरुष के अधीन रखा जाए।

मीरां के युग में इहलौकिक एवं परलौकिक प्रश्नों को सर्वथा नवीन सन्दर्भो में विश्लेषित किया जाने लगा था। जहाँ पूर्ववर्ती युगों में ईश्वर को परब्रह्म परम शक्ति माना जाता था तथा इस शक्ति एवं मनुष्य के परस्पर सम्बंन्धों पर गहन शोध ही सम्पूर्ण आध्यात्मिक विवेचन का एक हिस्सा हो गया था। दर्शन से सम्बंधित बड़ी-बड़ी बातें एवं बहसें जहाँ उपयोगिता की दृष्टि से आमजन के लिए सवर्था निरर्थक साबित हो रही थी वहीं इन प्रश्नों के मूल में दर्शन की शुष्कता तथा रसहीनता आमजन को इहलौलिक व परलौकिक प्रश्नों के दार्शनिक विवेचन से ऊबा रही थी। मीरां के समय तक आते-आते समाज की मानसिकता में आमूलचूल परिर्वतन होने लग गया था। तत्कालीन मूर्तिशिल्प के अध्ययन से हमें मीरां युग के समाज की मानसिकता एवं भक्ति के स्वरूप को समझने में उल्लेखनीय मदद मिलती है। चित्तौड़ दुर्ग में स्थित शृंगार चंवरी की बाहरी दीवारों पर स्त्री आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं एवं उसमें दो स्त्रियाँ अपने शिशुओं को स्तनपान करा रही हैं। ऐसी ही मूर्तियाँ चित्तौंड़ दुर्ग के अन्य मंदिरों और स्मारकों पर देखने को मिल जाती हैं, जिनमें स्तनपान अथवा पुत्र-प्रेम के दृश्य उत्कीर्ण

हैं। कुंभश्याम मंदिर, सूर्यमंदिर, मीरां मंदिर समेत प्रमुख मंदिरों के अन्य स्थलों पर उत्कीर्ण सूर्य मूर्ति के ठीक नीचे सूर्य-पुत्रों को भी उत्कीर्ण किया गया है। परवर्ती समय में बसे उदयपुर नगर के जगत शिरोमणि मन्दिर में भी ऐसी ही मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। इन समस्त मूर्तियों में सीधे-सीधे जिस रस को मूर्तिमान किया गया है, वह रस वात्सल्य रस है। यद्यपि ये मूर्तियाँ अधिकांशतः नग्न हैं परंतु, इस प्रकार की मूर्तियों में कामुकता के स्थान पर वात्सल्य का ही प्राधान्य है। इन मूर्तियों में कुछ मूर्तियाँ तो देवियों की हैं जबकि कुछ दृश्य तत्कालीन समाज से लिए गए हैं।[8]

वात्सल्य रस प्रधान मूर्तियों के समान ही वीर रसोयुक्त मूर्तियाँ भी मिलती हैं। कुछ मूर्तियाँ तो देवों की हैं जब कि कुछ लोकदेवताओं की मूर्तियाँ हैं। इन उत्कीर्ण मूर्तियों में घोड़े हाथी अथवा ऊँटों पर चढ़े वीर पुरूषों की मूर्तियाँ भी हैं और कहीं-कहीं युद्ध दृश्य भी अंकित हैं। मेवाड़ के मूर्ति शिल्प में हाथियों की लड़ाई के दृश्यों को बहुतायत में उत्कीर्ण किया गया है। उल्लेखनीय है कि मीरां के समय में विशेष तौर पर चित्तौड़ में, हाथियों की लड़ाई का खेल विशेष लोकप्रिय था।[9]

वीर रस के उत्कीर्णन के लिए युद्ध दृश्यों का अंकन जरूरी होता है किंतु युद्ध के विशाल फलक को पत्थर पर उत्कीर्ण करना कठिन कार्य था। अतः मूर्तिशिल्प में विशेष तौर पर रसराज श्रृंगार को ही प्रश्रय मिला। श्रृंगारिक भावों का उत्कीर्णन सबसे सरल एवं आसान कार्य था।[10] यद्यपि श्रृंगार, वात्सल्य, वीर आदि रसों के अलावा अल्प मात्र में रौद्र, वीभत्स आदि अन्य रसों की मूर्तियाँ भी मिलती हैं तथापि इनकी संख्या कम ही है।[11] हास्य को निम्न कोटि का रस माना जाता था, इसलिए मूर्ति शिल्प में प्रायः इसका अभाव ही देखने को मिलता है। इस प्रकार मूर्तिशिल्प में विभिन्न रसों का परिपाक देखने को मिलता है एवं उसमें भी प्रधानता रसराज श्रृंगार की है। मेवाड़ के सन्दर्भ में यह बताना भी प्रासंगिक होगा कि मीरां के युग में ही मेवाड़ का मूर्तिशिल्प अपने चर्मोत्कर्ष को प्राप्त करता है। अतः मीरां युग के समाज के अधययन में उस युग का मूर्ति शिल्प उल्लेखनीय मदद करता है।

मूर्तिशिल्प में विभिन्न रसों के परिपाक के अलावा प्रकृति एवं प्राकृतिक दृश्यों का उत्कीर्णन भी देखने को मिलता है, जिसमें पत्थरों पर बेल-बूटे आदि उत्कीर्ण किए गए हैं।[12] इस प्रकार हम देखते हैं कि मीरां के पूर्ववर्ती समय एवं मीरां के समय तक मूर्ति पूजा को महत्व मिलने का कारण उस युग के समाज का मूर्ति विशेष के भाव

अथवा चरित्र के प्रति आकर्षण था। मीरां ने भी भक्ति के इसी स्वरूप को अपनाया एवं कृष्ण के मुरलीधर रूप को अपना उपास्य देव बनाया।

सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि कृष्ण के प्रति मीरां की भक्ति कैसी रही होगी। मीरां मूर्तिपूजक थी। मूर्ति पूजा का अर्थ था कृष्ण की उस मूर्ति विशेष के भावों अथवा चरित्रों के प्रति श्रद्धा अथवा सम्मान की भावना। वस्तुतः मूर्तिपूजा ने उस युग की भक्ति के स्वरूप को न केवल सरल ही बनाया, वरन् भक्ति को रूखे दार्शनिक विवेचन-विश्लेषण से भी मुक्त किया। अब चिंतन का विषय ईश्वर व मानव के परस्पर सम्बंधों पर शोध करना न होकर ईश्वर की चरित्रगत विशेषताओं के प्रति भक्ति एवं सम्मान था, क्योंकि इस समय के भक्तों ने ईश्वर से अपना कोई न कोई सम्बंध जोड़ ही लिया था। मीरां भी कृष्ण को पति मानती थी। अतः मीरां के युग की भक्ति दर्शन की तुलना में साहित्य के अधिक नजदीक थी।

चित्तौड़गढ़ दुर्ग के मूर्तिशिल्प के अध्ययन से न केवल उस समय के समाज एवं भक्ति के स्वरूप का अनुमान होता है वरन् मूर्तिशिल्प हमें मीरां से सम्बंधित पुरातात्विक स्थलों और मीरां से सम्बंधित मंदिरों व भवनों के काल -निर्धारण में भी सहायता प्राप्त करता है। उदाहरण स्वरूप मीरां के समय में गणपति को प्रायः एक गौण देवता के रूप में ही पूजा जाता था। गणपति को प्रायः शिव-पार्वती के पुत्र के रूप में जाना जाता था। मध्यकाल में युद्ध में हाथियों के महत्व के बढ़ने तथा हाथियों की लड़ाई के खेल की लोकप्रियता के साथ ही गणपति का महत्व बढ़ने लगा। हाथी रखना, प्रभुत्व सम्पन्नता की पहचान भी थी। धीरे-धीरे गणपति को बुद्धि एवं प्रभुत्व का देव माना जाने लगा। यह स्थिति वस्तुतः मीरां के परवर्ती युग की देन है। अतः मीरां युग से परवर्ती युग में गणपति को प्रायः गर्भगृह के प्रवेश द्वार के मध्य प्रतिष्ठित किया जाने लगा। चूंकि मीरां मंदिर इस युग के पूर्ववर्ती युग की देन है अतः वहाँ गणपति के स्थान पर विष्णु ही प्रतिष्ठित है।[13] चित्तौड़गढ़ दुर्ग में ही अद्भुद्नाथ मंदिर जिसे जैन मंदिर से बाद के समय में शिवमंदिर में परिवर्तित कर दिया गया था, के गर्भगृह के प्रवेश द्वार पर राजपूताने के आधुनिक मंदिरों के समान ही गणपति स्थापित है। पूरे मीरां मंदिर में केवल एक ही गणेश मूर्ति मिली है एवं वह भी मंदिर की बाहरी दीवार पर।[14]

मीरां का संबंध न केवल राजपरिवार से था वरन् एक ऐसे राजपरिवार की वह बहू थी जो संभवतः उस समय भारत का सबसे ताकतवर राजपरिवार था। मीरां

के समय यह राजपरिवार अपने वैभव के चर्मोत्कर्ष पर था। चित्तौड़ दुर्ग के भवनों, स्मारकों तथा मंदिरों के मूर्तिशिल्प एवं निर्माण का अध्ययन करें तो सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि चित्तौड़ उस समय धन सम्पति से लबरेज था। यदि खानवा के युद्ध में मीरां के श्वसुर राणा संग्राम सिंह की पराजय नहीं हुई होती तो मेवाड़ पूरे भारत की सत्ता का केन्द्र बिंदु होता एवं मीरां बतौर राजनीतिक उपलब्धि इस पूरी भारत भूमि की युवरानी होती। स्थापत्य एवं मूर्ति निर्माण कला में परवर्ती अवनति के चिह्न भी मेवाड़ के क्रमिक पतन का खुलासा करते हैं। मीरां मंदिर एवं उस मंदिर के मूर्ति शिल्प का साक्ष्य यह प्रमाणित करने के लिए प्रर्याप्त है कि मीरां की राजनैतिक हैसियत क्या रही होगी। मीरां की राजनैतिक शक्ति इतनी अधिक थी कि स्वयं महाराणा भी मीरां की राजमहल में उपस्थिति से असुरक्षा महसूस करते थे। मीरां को अल्प आयु महाराणा विक्रमादित्य द्वारा प्रताड़ित करने की घटना का विश्लेषण हमें इसी सन्दर्भ में करना होगा। आज मीरां की छवि केवल एक भक्त के रूप में बनकर रह गई है। एक ऐसा भक्त जिसमें न तो प्रतिरोध का साहस था एवं न ही सत्ता प्रतिष्ठानों से लड़ने की शक्ति। मीरां ऐसी भक्त न थी जो चुपचाप प्रताड़ना सहन करती, वरन् मीरां तो एक ऐसी भक्त थी जिसके प्रतिरोधी आंदोलनों से न केवल महाराणा वरन् उस समय का परम्परावादी पुरोहित वर्ग भी घबरा उठा था।

मीरां ने भक्ति को शास्त्रीयता से मुक्त कराया। मीरां मंदिर के गर्भगृह के प्रवेश द्वार पर नर्तकियों एवं अप्सराओं की मूर्तियाँ बनी हुई हैं। इन मूर्तियों का गहन विश्लेषण करें तो हमें ज्ञात होगा कि इन नर्तकियों द्वारा किया जाने वाला नृत्य निश्चित शास्त्रीय खाँचों में बंधा हुआ था। यहां तक कि नायिकाओं के रूप, रंग अदा एवं शारीरिक गठन के भी निश्चित शास्त्रीय प्रतिमान थे। सुन्दरता एवं नृत्य संगीत की उत्कृष्टता के निर्धारण हेतु निश्चित नियम एवं प्रतिमान थे।[15] मीरां ने न केवल इन नियमों प्रतिमानों की अवहेलना करते हुए उस नृत्य की श्रेष्ठता को प्रतिपादित किया, जो ईश्वर को अर्पित हो, न कि शास्त्रीय ढ़ांचो में बंधा-बंधाया नृत्य। मीरां भी भजन गाते हुए 'लोक लाज' को त्याग कर नृत्य करती थी किंतु वह नृत्य किसी नियमों में बंधा हुआ न था। मीरां के भजन भी किसी भी प्रकार के शास्त्रीय नियमों प्रतिमानों की पूर्ण अवहेलना करते हैं, तथापि मीरां के भजन उत्तर से लेकर दक्षिण तक समान रूप से लोकप्रिय हैं। निश्चय ही इसका कारण मीरां के भजनों का लोक एवं लोक की

भावनाओं के नज़दीक होना हैं। प्रसंगवश उल्लेखनीय है कि मीरां के समय स्त्रियों में शेरनी जैसी कमर विशेष तौर पर पसंद की जाती थी। दुर्ग के निवासियों के मध्य शेरनी जैसी कमर इतनी अधिक लोकप्रिय थी कि कई बार नायिका की मूर्ति बनाते समय शिल्पकार कमर से ऊपर का भाग स्त्री का बना देता था जबकि कूल्हे एवं कमर के नीचे का भाग पूंछ हटाकर शेरनी जैसा बना देता था।[16]

कीर्ति स्तम्भ तथा चित्तौड़ दुर्ग के मंदिरों की बाहरी दीवारों के मूर्ति शिल्प से मीरां युग के समाज एवं सामाजिक विभेदों की भी सुव्यवस्थित जानकारी मिलती है। भारतीय मूर्तिकला का शब्दकोष कहे जाने वाले कीर्ति स्तम्भ की भीतरी दीवारों पर नीचे से ऊपर चढ़ते हुए सीढ़ियों के साथ-साथ अनेक देवी-देवताओं तथा-अर्द्धनारीश्वर, उमामहेश्वर, ब्रह्मा, लक्ष्मी-नारायण, सावित्री, हरिहर पितामह व विष्णु के विभिन्न रूपों व अवतारों की तथा महकाव्यों के पात्रें की मूर्तियाँ बनी हुई हैं। उल्लेखनीय बात यह है कि इन विभिन्न देवताओं की मूर्तियों के साथ इन मूर्तियों को मूर्तरूप देने वाले शिल्पकार जइता व उसके पुत्रों नापा, पोमा, पूंजा, भूमि चुथी तथा बलराज की मूर्तियाँ भी उत्कीर्ण हैं। शिल्पकारों की इन मूर्तियों के नीचे शिल्पिन् खोदकर तत्पश्चात इन शिल्पियों के नाम दिए गए हैं। इसी भांति मीरां-मंदिर की बाहरी दीवारों पर देव आकृतियों के साथ-साथ मानव आकृतियाँ भी खुदी हुई हैं। मीरां मंदिर की पूर्वाभिमुख दीवार पर छाछ बिलोती एक स्त्री की मूर्ति भी बनी हुई है।[17] ठीक इसी प्रकार अद्भुद्नाथ जी के मंदिर तथा वे मंदिर जो मीरां युग के हैं, पर देव मूर्तियों के साथ-साथ मानव मूर्तियाँ भी उत्कीर्ण की हैं। जहाँ तक शास्त्रीयता का प्रश्न है, मीरां युग पर शास्त्रीयता पूर्ण रूपेण हावी थी। शास्त्रीयता का यह प्रभाव केवल नृत्य, संगीत, पूजा एवं आचार-व्यवहार में ही नहीं वरन् मूर्ति शिल्प पर भी हावी था। मूर्ति की उत्कृष्टता के भी निश्चित नियम एवं प्रतिमान तय थे। कौनसे देव की मूर्ति दीवार के किस हिस्से में, कहाँ एवं किस कोण पर होनी चाहिए, यह भी निश्चित था। मंदिरों की पश्चिमी दीवार प्राय: रिक्त रखी जाती थी। वहाँ केवल साधारण बेल-पत्रों की आकृतियों को ही उत्कीर्ण किया जाता था।[18] मीरां के समय मंदिरों की बाहरी दीवारों पर जो मूर्तियाँ स्थापित की जाती थी, उनमें सूर्य, यम, लक्ष्मी, देवी, लक्ष्मी-नारायण, शिव, पार्वती, सूर्य आदि देवताओं की मूर्तियाँ प्रमुख हैं। यहाँ तक कि दीवार के किस हिस्से में कहाँ पर मूर्तियाँ स्थापित की जानी हैं, इसके भी निश्चित शास्त्रीय नियम हुआ करते थे। इन

मूर्तियों के साथ-साथ जैन तीर्थकरों तथा लोक देवताओं की मूर्तियाँ स्थापित की जाती थी।[19] इसके पश्चात् नायिकाओं और वीर पुरुषों की मूर्तियाँ स्थापित होती थी।[20] लोक जीवन की झाँकी प्रस्तुत करने वाली मूर्तियाँ भी इन मूर्तियों के मध्य में स्थापित की जाती थी लेकिन, बहुत कम संख्या में। ध्यान देने वाली बात यह है कि मूर्ति के स्थान एवं क्रम के आधार पर हमें मीरां युग में भक्त तथा भगवान के परस्पर सम्बंधों में महत्वपूर्ण जानकारियाँ मिलती हैं। दक्षिण भारत में राजराजेश्वर अथवा वृहद्देश्वर मंदिर में ईश्वर की तरह राजाओं की मूर्तियाँ स्थापित हैं। मेवाड़ की ये मूर्तियाँ ऐसा दूसरा उदाहरण हैं, जिसमें ईश्वर के साथ-साथ मनुष्यों की मूर्तियाँ स्थापित की गई हैं। यह बात भी उल्लेखनीय है कि इन मूर्तियों में राजाओं के साथ-साथ मेहनतकश लोगों की मूर्तियाँ भी लगी हुई हैं। कीर्ति स्तम्भ के निर्माण कर्ताओं की मूर्तियाँ ईश्वर की मूर्तियों के साथ स्थापित हैं। अन्य मंदिरों में भी देव मूर्तियों के साथ-साथ योद्धाओं, नायिकाओं, लोकदेवताओं, तथा जनसाधाारण की मूर्तियाँ उकेरी गई हैं। देव व मनुष्य की समानता की भावना के कारण ही मीरां युग में भक्त व भगवान में परमशक्ति व मनुष्य के मध्य के अंतर को अस्वीकार करने की मान्यता का परिचय मिलता है। परवर्ती युग में अन्य धर्मों के प्रभाव स्वरूप भक्त व भगवान के मध्य अंतर बढ़ता गया एवं धीरे-धीरे मीरां युग में भक्त व भगवान की समानता का भाव कम होता गया। मेवाड़ क्षेत्र में अलग-अलग समय एवं अलग-अलग स्थानो पर निर्मित एवं बिखरी हुई मूर्तियाँ हमें तत्कालीन समाज एवं परवर्ती सामाजिक विकास की जानकारियों के साथ-साथ अन्य महत्वपूर्ण जानकारियाँ भी प्रदान करती हैं। चित्तौड़, उदयपुर एवं समीपवर्ती क्षेत्रों की मूर्तियों का कालक्रमानुसार अध्ययन करने पर हमें दो महत्वपूर्ण जानकारियाँ प्राप्त होती हैं। मीरां युग के परवर्ती युग की मूर्तियों को कालक्रमानुसार व्यवस्थित करें तो प्रथम हमें कृष्ण भक्ति के विकास को समझने में महत्वपूर्ण मदद मिलती है। मीरां युग से पूर्ववर्ती युग में सूर्य, शिव का लिंग रूप, विष्णु, ब्रह्मा आदि प्रमुख देवताओं की मूर्तियाँ प्रमुखता से मिलती हैं, जबकि मीरां से परवर्ती युग में कृष्ण आदि देवताओं की मूर्तियाँ प्रमुखता से मिलती हैं। चित्तौड़ दुर्ग के किसी भी मंदिर में कृष्ण अथवा मुरलीधर की मूर्ति जो कि मीरां के आराध्य देव थे को ढूंढना संभव नहीं जब कि परवर्ती युग में इस प्रकार की मूर्तियाँ बहुतायत से मिलती हैं। सहज ही इस निष्कर्ष तक पहुँचा जा सकता है कि कृष्ण भक्ति को लोकप्रियता मीरां के परवर्ती युग में ही मिलती है। इसमें भी मुरलीधर

कृष्ण जो बड़ा-सा मोर मुकुट धारण करते थे, विशेष लोकप्रिय थे। उदयपुर के निकट नाथद्वारा के समीप मोलेला गाँव के मिट्टी के खिलौने विशेष प्रसिद्ध हैं। ये खिलौने मध्यकालीन कुंभकला का परिचय देते हैं। इन खिलौनों में कृष्ण को इसी रूप में चित्रित किया जाता है, जिनका मोर मुकुट अपेक्षाकृत बड़ा होता है।[21]

मूर्तिशिल्प के क्रमिक अध्ययन से अन्य महत्वपूर्ण जानकारी नग्नता के क्रमिक विकास के रूप में भी देखने को मिलती है। मीरां युग का शिल्पकार प्रायः स्त्री नग्नता को ही विशेष तौर पर उत्कीर्ण करता था। मीरां मंदिर एवं उस समय के निर्मित अन्य मंदिरों में नायिकाएँ एवं देवियाँ नग्न उत्कीर्ण की गई हैं। परवर्ती युग में पुरुष नग्नता को भी मूर्तिशिल्प में स्थान मिलने लगता है। पुरुष नग्नता विशेष तौर पर जैन मंदिरों में अधिक मिलती है। अद्भुद्नाथ मंदिर जो कि पहले जैन मंदिर था, के मूर्ति शिल्प में कुछ ऐसी पुरुष आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं जिनका लिंग अपने पूर्ण आकार में उत्कीर्ण है। शेष शरीर से लिंग को बड़ा दिखाया गया है। इस उत्कीर्ण लिंग पुरुष का शेष शरीर शेर का बनाया गया है। मीरां युग के काफ़ी समय पश्चात् जब कि उदयपुर नगर पूर्ण रूप से बस चुका था एवं मेवाड़ ने मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली थी, उस समय की बनी मूर्तियों में रति क्रिया का खुल्लम-खुल्ला चित्रण किया गया हैं। अर्थात् मीरां के समय कृष्ण के प्रेम को जिस प्रकार सामाजिक विद्रोह हेतु अस्त्र के रूप में काम में लिया गया था, मीरां के परवर्ती समय में कृष्ण लीला प्रेम न रहकर रतिक्रीड़ा का उत्कीर्णन हो गया था।[22]

मीरां के समय की मूर्तिकला में एक अन्य उल्लेखनीय विशेषता विभिन्न शरीरों को एक साथ जोड़ने के रूप में दिखाई देती है। मीरां मंदिर के पिछली दीवार पर एक ऐसी मूर्ति प्राप्त हुई है, जिसकी नाभि के नीचे का भाग शेरनी का है तो आगे का भाग हाथिनी का है।[23] इसी प्रकार अद्भुद्नाथ महादेव के मंदिर में सिंह पुरुष की मूर्ति में पुरुष का लिंग और खड़े रहने की क्रिया मानवों के समान है, जबकि शेष सारी मूर्ति एक शेर का शरीर है। मीरां मंदिर के सामने वर्तमान में जिसे रैदास की छतरी कहा जाता है, उसकी छत पर बने पुरुष मुख से पाँच शरीर जुडे हुए हैं। इसी प्रकार अनेक देव मूर्तियों में इसी प्रकार की कला का प्रदर्शन मिलता है।[24] इन मूर्तियों में शेष शरीर मानव का है, तो मुख हाथी का। इसी प्रकार किसी-किसी देव के चार हाथ हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने शिल्प कला के इस रूप को यथार्थ से दूर होने के कारण कमतर

1

2

3

4

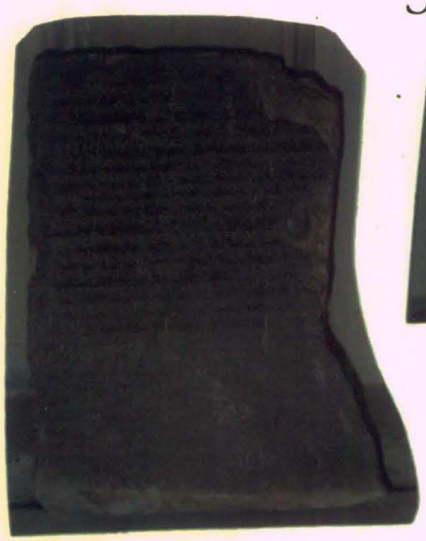

5

6

7

8

9

10

11

12

13

14

15

16

17

18

19

20

21

22

23

24

25

26

27

28

29

30

31

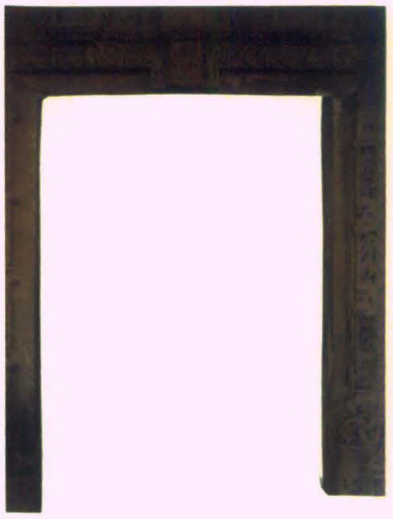

32

33

34

35

36

37

38

39

40

41

42

43

44

45

46

47

48

49

50

51

52

53

54

55

56

57

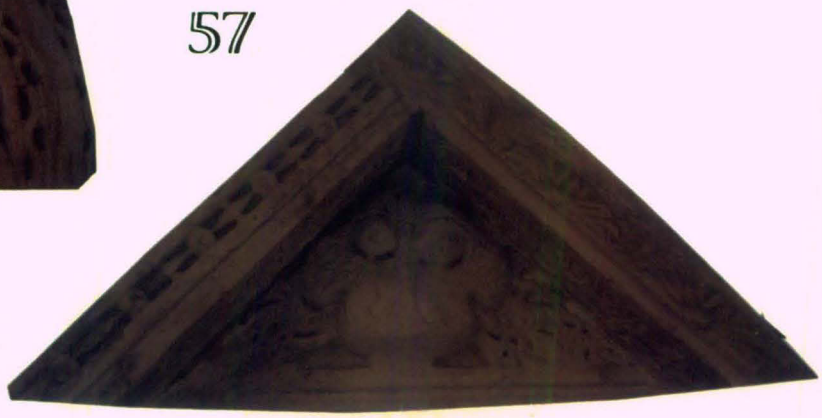

58

59

60

61

62

63

64

65

66

67

68

69

70

71

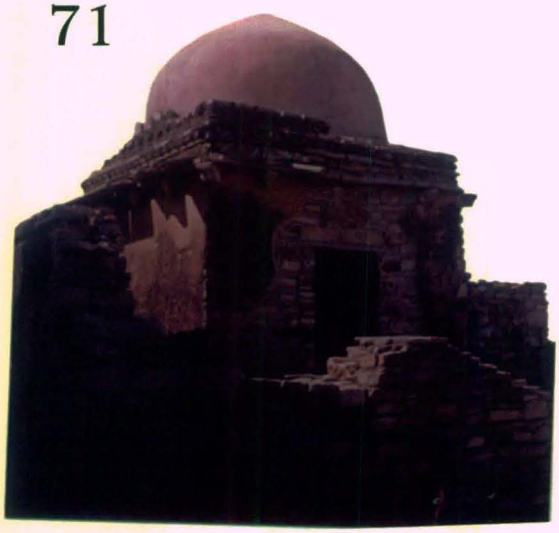

72

73

74

75

76

एवं हिन्दू देवी देवताओं की मूर्तियों के सन्दर्भ में इसे अंधविश्वास का परिणाम बताया है। वास्तविकता यह है कि देव मूर्तियों के साथ-साथ मानव एवं पशु आकृतियों को परस्पर मिश्रित करके मूर्ति का निर्माण करना अथवा देव आकृतियों में अतिरिक्त हाथों अथवा शरीर को जोड़ना उस युग के मूर्ति शिल्प की विशेषता थी न कि अंधविश्वास का परिणाम। इसका एक प्रमुख कारण ईश्वर के चरित्र विशेष की आराधना करना प्रमुख था और वे चरित्र यथार्थ की अपेक्षा आदर्श के अधिक निकट थे। मीरां के युग में ईश्वर के प्रति लोक की आराधना को इसी सन्दर्भ में समझना होगा।

मीरां युग के सम्पूर्ण मूर्तिशिल्प के अध्ययन से हमें मीरां युग के समाज की वेशभूषा के निर्धारण में भी सहायता प्राप्त होती है। निश्चित तौर पर मीरां की वेशभूषा भी इससे भिन्न नहीं होगी। प्राय: मीरां के युग में वस्त्रों का कम ही प्रयोग किया जाता था। शरीर के ऊपरी भाग को प्राय: खुला ही छोड़ दिया जाता था एवं उसे अश्लील नहीं माना जाता था। श्रृंगार चंवरी की बाहरी दीवारों पर उत्कीर्ण मूर्तियों एवं सतबीसदेवरी जैन मंदिर पर उत्कीर्ण मूर्तियाँ हमें उस युग की वेशभूषा की ठीक-ठाक जानकारी देती है। मीरां मंदिर में छाछ बिलौने वाली स्त्री के शरीर का ऊपरी भाग खुला हुआ है। अंत: इसी निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि मीरां ओढ़नी और घाघरा पहनती रही होगी किंतु उसकी वेशभूषा वर्तमान राजपूती पहनावे से बिलकुल मेल नहीं खाती थी इतना निश्चित है।[25]

मेवाड़ की राजसत्ता ने धर्म का किस प्रकार उपयोग किया इसका अनुमान तत्कालीन मूर्तिशिल्प के अध्ययन से लगाया जा सकता है। यहाँ तक कि मेवाड़ के महाराणाओं ने आम जनता का विश्वास हासिल करने के लिए मूर्ति शिल्प एवं मूर्तियों की बनावट को भी बदल दिया। अभी हाल ही में चित्तौडगढ़ दुर्ग से पुरातत्ववेत्ताओं को एक विशाल लिंग प्राप्त हुआ है। इस लिंग के मध्य भाग में चारों तरफ जैन तीर्थकरों की मूर्तियाँ बनी हुई हैं। तीर्थकरों के पास ही पार्श्व में जैन मंदिरों में स्थापित मूर्तियों के समान ही देवी-मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। इसके ऊपर भी तीर्थकरों की छोटी-छोटी मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। इस लिंग का ऊपरी भाग पूरी तरह से गोल एवं शिवलिंग के समान पूर्ण लिंग का रूप लिये हुए है।[26] उदयपुर के निकट कैलाशपुरी में एकलिंगनाथ का लिंग ठीक इसी प्रकार की कला का परिचय देता है जिसके आधार बिन्दु पर देव आकृतियाँ उत्कीर्ण है जब कि शीर्ष भाग लिंग का रूप ग्रहण करता है।

सूर्य मंदिर परिसर में प्राप्त लिंगाकृति में जैन मंदिर और चित्तौड़गढ़ दुर्ग में प्राप्त लिंग में ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। इसी भांति राजकीय संग्रहालय बीकानेर में ब्रह्मा की एक मूर्ति है जिसका पृष्ठ भाग वाराह मूर्ति का आभास कराता है। यह मूर्ति ढ़ांवा नागौर से प्राप्त की गई थी।[27] मीरां मंदिर में उत्कीर्ण नाथ योगियों की आकृतियाँ बहुत कुछ जैन तीर्थकरों से मिलती हैं।[28] इस प्रकार के मूर्ति शिल्प का एक निश्चित प्रयोजन था। मीरां का पूर्ववर्ती युग विभिन्न सम्प्रदायों में तीव्र मतभेद का भी युग था। एक ही लिंग अथवा मूर्ति में विभिन्न देवताओं को समाहित करने का मुख्य उद्देश्य इन सम्प्रदायों में परस्पर समन्वय का प्रयास था। इस प्रयास का स्पष्ट प्रभाव तत्कालीन मूर्तिशिल्प पर पड़ा। मेवाड़ के महाराणा शैव थे एवं वे शिव की लिंग रूप में आराधना करते थे। एकलिंगनाथ उनका कुल देवता था। मेवाड की वृहत प्रजा में केवल शैव ही नहीं थे, उस प्रजा में बड़ी संख्या में जैन, वैष्णव, शाक्त एवं आदिवासी जातियाँ भी सम्मिलित थी। महाराणाओं ने विशाल प्रजा की सदेच्छा प्राप्ति हेतु लिंगों का इस प्रकार निर्माण करवाया कि उनमें न केवल विष्णु और अन्य देव सम्मिलित हो जाए वरन् कभी-कभी तो वे इन लिंगों में सर्वथा दूसरे धर्म जैसे कि जैन तीर्थकरों की मूर्तियाँ तक उत्कीर्ण करवा देते थे। महाराणाओं को इसका व्यापक राजनीतिक फायदा हुआ एवं स्वयं शैव होते हुए भी शेष जैन, शाक्त, वैष्णव तथा आदिवासी जातियों की सदेच्छा प्राप्ति में वे सफल रहे। इसके साथ ही इस प्रक्रिया में प्रजा के पारस्परिक सौहार्द में भी वृद्वि हुई। महाराणाओं की ही भांति मीरां ने भी धर्म का उचित उपयोग करते हुए मोर मुकुट एवं मुरली वाले कृष्ण की आराधना आरंभ की। प्रसंगवश शिव की एक पूर्व पत्नी जिसका नाम सती था एवं वह दक्ष प्रजापित की पुत्री थी, हवन कुंड में जलकर सती हो गई थी। इसी प्रकार विष्णु की पत्नी लक्ष्मी भी पति की अनुचरी मात्र ही थी एवं अनेक मूर्तियों में उसे पति के पाँव दबाते हुए उत्कीर्ण किया गया है। मीरां ने नवीन सामाजिक जरूरतों को समझते हुए शिव व विष्णु की आराधना को प्रश्रय न देकर कृष्ण भक्ति को महत्व दिया।

इस प्रकार मूर्तियों के अध्ययन से मीरां युग के धर्म, भक्ति के स्वरूप का ही नहीं वरन् धर्म व राजसत्ता के परस्पर सम्बंधों का भी ज्ञान होता है। निःसंदेह शिलालेखों, भवनों, मंदिरों व स्मारकों के समान मीरां के युग की मूर्तियाँ भी मीरां एवं उसके युग से सम्बंधित महत्वपूर्ण जानकारियाँ उपलब्ध कराती है।

संदर्भः

1. मेवाड़ प्रदेश का मूर्तिशिल्प, चित्तौड़ दुर्ग, चित्र-12, 13, 14, 21, 22, 25, 42, 43
2. मूर्ति संग्रह, सिंहपुर महल संग्रहालय, चंदेरी (मध्य प्रदेश)
3. जैन सरस्वती, राजकीय संग्रहालय, बीकानेर, क्रमांक-203
4. मूर्तिसंग्रह, सीटी पैलेस, उदयपुर
5. मूर्तिदीर्घा, राजकीय संग्रहालय, उदयपुर
6. दुर्ग क्षेत्र का मूर्तिशिल्प, चित्तौड़ दुर्ग, चित्र-12, 19, 22, 28, 33, 39, 43, 52, 53
7. करणी माता, राजकीय संग्रहालय, बीकानेर, क्रमांक-213
8. वात्सल्य रस प्रधान मूर्तियां, शृंगार चंवरी, चित्तौड़ दुर्ग, चित्र-02
9. योद्धाओं की मूर्तिया, मंदिर परिक्रमा, मीरां मंदिर, चित्र-34, 56
10. मूर्तिशिल्प, जगत शिरोमणि मंदिर, उदयपुर, चित्र-01, 08, 24, 36, 46, 59
11. परशुराम-लोकदेव-भैरव, मीरां मंदिर, चित्तौड़ दुर्ग, चित्र-17, 38, 51
12. परिक्रमा, कुंभश्याम मंदिर, चित्तौड़ दुर्ग, चित्र-45, 61
13. गर्भगृह प्रवेश द्वार, मीरां मंदिर, चित्तौड़ दुर्ग, चित्र-31, 40, 49
14. गणेश, मंदिर परिक्रमा, मीरां मंदिर, चित्र-50
15. नर्तकियां गर्भगृह प्रवेश द्वार, मीरां मंदिर, चित्र-31, 49
16. सिंहनी नायिका, कुंभश्याम मंदिर परिसर, चित्तौड़ दुर्ग
17. छाछ बिलोती स्त्री, पूर्वाभिमुख दीवार, मीरां मंदिर, चित्र-29
18. बेलपत्र, पश्चिमाभिमुख दीवार, मीरां मंदिर परिक्रमा, चित्र-45
19. तीर्थंकरों की मूर्तियां, विभिन्न मंदिर, चित्तौड़ दुर्ग, चित्र-18, 27, 33
20. नायिकाएं, मंदिर परिक्रमाएं, मेवाड़ क्षेत्र, चित्र-08, 09, 13, 25, 35
21. मोर मुकुटधारी कृष्ण, जगत शिरोमणि मंदिर, उदयपुर, चित्र-08

22. रतिदृश्य, मंदिर परिक्रमा, जगत शिरोमणि मंदिर, चित्र-01, 24, 36, 59

23. सिंह हस्ती संगुफन, मंदिर परिक्रमा, मीरां मंदिर, चित्र-26

24. जूते बनाते रैदास, रैदास की छतरी, चित्तौड़ दुर्ग, चित्र-54

25. नायिका मूर्ति, सतबीस देवरी, चित्तौड़ दुर्ग, चित्र-21

26. तीर्थंकर युक्त शिवलिंग, तोपखाना, चित्तौड़ दुर्ग, चित्र-37

27. ब्रह्मा की मूर्ति, राजकीय संग्रहालय, बीकानेर

28. नाथयोगी, परिक्रमा, मीरां मंदिर, चित्र-03

अध्याय तीन

हस्तलिखित पांडुलिपियाँ, भक्तमाल एवं वार्ता साहित्य

[साहित्यिक स्रोत सामग्री]

अध्याय तीन

हस्तलिखित पांडुलिपियाँ, भक्तमाल एवं वार्ता साहित्य

[साहित्यिक स्रोत सामग्री]

मीरां के काव्य, भक्ति एवं बहुत थोड़ी मात्रा में उनके जीवन के बारे में सर्वाधिक यही स्रोत सामग्री उपलब्ध है किन्तु इसकी विश्वसनीयता सर्वाधिक संदेह के घेरे में है। लिखित स्रोत सामग्री में लेखकीय पूर्वाग्रह तो होते ही हैं साथ ही साथ तत्कालीन राजनीति, सामाज परम्पराओं एवं व्यक्तिगत मान्यताओं का प्रभाव भी रहता है। कई बार हस्तलिखित प्रतियों में गंभीर परिवर्तन भी कर दिए जाते थे, वहीं जब छापेखाने के अभाव में इन हस्तलिखित प्रतियों से नई प्रतियां तैयार की जाती थी तब तैयार की कई प्रतियों का स्वरूप अपनी मूल प्रति से बहुत कुछ भिन्न हो जाता था। मीरां के नाम से प्रचलित पद भी इसका अपवाद नहीं हैं। मीरां के जीवन के बारे में जानकारी देने वाली हस्तलिखित स्रोत सामग्री का गंभीर अभाव है किन्तु मीरां के नाम से प्रचलित पद उत्तर तथा दक्षिण, पूर्व तथा पश्चिम अर्थात् भारत के प्रत्येक कोने में मिल जाएंगे। केवल उनकी भाषा एवं विषय वस्तु बदल जाएगी। कुछ भक्त-कवियों एवं दो-चार ख्यातकारों ने भी मीरां का चलताऊ रूप से उल्लेख किया है। इन टिप्पणियों और उल्लेखों की मात्रा केवल कुछ पृष्ठों से अधिक नहीं है परन्तु यदि मीरां के समस्त पदों को संग्रहीत किया जाए तो इनसे अनेक ग्रंथ आसानी से तैयार किए जा सकते हैं।

देश के विभिन्न हिस्सों में मीरां के नाम से अनेक पद मिलते हैं, मीरां के आलोचक उन्हें स्वयं मीरां द्वारा रचित मानकर उनका अंत:साक्ष्य के रूप में प्रयोग करते हैं। गुजरात में मिलने वाले पदों में गुजराती, उत्तर प्रदेश तथा मध्य भारत में मिलने वाले पदों में ब्रज तथा राजपूताने के विभिन्न हिस्सों में मिलने वाले पदों में मेवाड़ी, हाड़ौती, मारवाड़ी आदि भाषाओं का प्रभाव दिखाई देता है। ठीक इसी प्रकार पूर्वी भारत में मीरां के नाम से प्रचलित पदों में पूर्वी भाषाओं का प्रभाव तथा दक्षिण भारत में मीरां के जो पद मिले हैं उनमें दक्षिणी भाषाओं के शब्द व प्रभाव दिखाई देता है। इस तथ्य के आधार पर मीरां की मृत्यु के सैकड़ों वर्षों के अंतराल को देखते हुए एवं भोज पत्रों व ताड़ पत्रों के संरक्षण की सीमाओं को समझते हुए इतना तो निश्चित है कि ये समस्त पद मीरां द्वारा रचित नहीं हैं।

यदि यह मान भी लिया जाए कि मीरां को मेवाड़ी, मारवाड़ी, गुजराती, ब्रज आदि अनेक भाषाओं का ज्ञान था तब भी, मीरां के नाम से प्रचलित पदों में क्षेत्रीयता एवं क्षेत्रगत शब्दों का बाहुल्य मिलता है यदि ये पद मीरां द्वारा रचित होते तो गुजरात में ब्रज, मारवाड़ी व मेवाड़ी तथा ब्रज मंडल में गुजराती, मेवाड़ी मारवाड़ी एवं मेवाड़ मारवाड़ में ब्रज व गुजराती प्रभाव से युक्त मीरां के पद मिलने चाहिए परन्तु ऐसा न होकर इन पर क्षेत्रीय प्रभाव ही स्थायी तौर पर दिखाई देता है। नि:संदेह इनके रचनाकार क्षेत्रीय व्यक्ति ही थे जिन्होंने मीरां काव्य से प्रेरणा तो अवश्य ग्रहण की किन्तु उसकी हू-ब-हू नकल नहीं की। अत: मीरां के इन पदों को मीरां द्वारा रचित मानकर अंत:साक्ष्य के रूप में प्रयोग करना सर्वथा अनुचित है जैसा कि कुछ मीरां के विद्वान आलोचक करते आए हैं।

मीरां के पदों की खोज के क्रम में एक विचित्र बात भी देखने को मिलती है- मीरा के अपने देश अर्थात मेवाड़ में मीरां के पद बहुत अधिक मात्रा में नहीं मिलते हैं जो कुछ मीरां के पद मिलते हैं वे मारवाड़, ब्रजमंडल एवं गुजरात में मिलते हैं। मध्यकालीन मेवाड़ के इतिहास के अधिकारिक विद्वानों से चर्चा के दौरान पता चला कि मेवाड़ का सत्ता प्रतिष्ठान मीरां संबंधी चर्चा से हमेशा बचता रहा है एवं मीरां की प्रसिद्धि भक्त व कवि के रूप में जन सामान्य द्वारा स्वीकार किए जाने का प्राय: विरोध करता रहा है। यहां तक कि आजादी के बाद उदयपुर के गुलाब बाग में रानी विक्टोरिया की मूर्ति के स्थान पर मीरां की मूर्ति लगाने का मेवाड़ राज परिवार ने विरोध किया था।[1] वर्तमान में यहां गांधी की मूर्ति प्रतिस्थापित है। संभवत: यही वजह थी कि मेवाड़ क्षेत्र में मीरां के पद अधिक नहीं मिलते हैं किन्तु इसके ठीक विपरीत मीरां संबंधी चर्चा एवं किवदंतियां भी सर्वाधिक मेवाड़ में ही मिलती हैं। नि:संदेह मीरां लोकनिधि थी न कि समाज के उच्च वर्ग की प्रतिनिधि। मारवाड़, गुजरात व मालवा की सत्ता से मेवाड़ का प्राय: विरोध रहा है, मीरां के पद अधिकांशत: इन्हीं प्रदेशों में मिलते हैं जिनसे मेवाड़ी सत्ता का लगातार छत्तीस का आंकड़ा बना रहता था। मीरां के पदों की इसलिए भी उपेक्षा हुई कि मीरां एक स्त्री थी जिसकी विद्वता पर तत्कालीन वैष्णवों व समकालीन अन्य भक्त कवियों द्वारा लगातार संदेह किया जाता था जिनकी राय में स्त्रियां प्राय: बुद्धिविहीन होती है। इन बाधाओं के होते हुए भी यदि हमें

आज भी मीरां के नाम पर प्रचलित पद मिल जाते हैं तो नि:संदेह इसका कारण मीरां की व्यापक लोकस्वीकृति थी जिसने मीरां के पदों को जीवित बनाएं रखा।

प्रस्तुत शोध में मीरां के पदों का अध्ययन क्षेत्र मेवाड़, मारवाड़ एवं मध्यकालीन राजपूताने के क्षेत्र रहे हैं जो मीरां की जन्मस्थली एवं कर्मस्थली थी। सुविधा व साधनों के अभाव में शेष भारत में मिलने वाले पदों का प्राय: अध्ययन नहीं हो पाया तथापि उनका महत्व किसी भी दृष्टिकोण से कम नहीं है। राजपूताने में मीरां के नाम पर प्रचलित पदों में हरजसों, भजनों व गीतों का विशेष महत्व है। इन हरजसों, गीतों व भजनों का रचियता कोई न कोई स्थानीय विद्वान होता है जिसकी भाषा, शैली एवं समझ पर स्थानीय रीति रिवाज एवं बोलियों का प्रभाव होता है। मीरां के इन पदों के साथ-साथ अन्य भक्त कवियों जैसे सूर, कबीर, दादू आदि अन्य भक्त कवियों के पद भी देखने को मिल जाते हैं किन्तु विशिष्टता इन तथ्य में है कि इन पुरुष भक्त कवियों में मीरां अकेली ऐसी स्त्री होती है जिसके पदों, हरजसों व गीतों को पुरुष भक्त कवियों के पदों, हरजसों व गीतों के साथ सम्मिलित किया गया होता है। मारवाड़ के बीकानेर नगर के लालगढ़ महल की 'अनूप संस्कृत लाइब्रेरी' में मीरां के नाम पर प्रचलित कुछ ऐसे ही हरजसों की हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त हुई हैं। ये हरजस अधिक प्राचीन न होकर कुछ सौ वर्ष पहले के प्रतीत होते हैं इनकी कुल संख्या 73 है जिसमें मीरां के साथ-साथ सूरदास, ब्रह्मदास आदि अन्य भक्त कवियों के भजन तथा हरजस भी सम्मिलित है।[2]

इसी पुस्तकालय में बाइजी जड़ाव कुंवर की प्रतियों में भी मीरां के भजन मिलते हैं। इसके लेखक कोई साधु मनसुखदास थे जिनका संबंध रामसनेही शाखा से था। इन हरजसों की कुल संख्या 326 है जिनमें मीरां के साथ अन्य भक्त कवियों के भजन-गीत भी सम्मिलित हैं।[3] इसी क्रम में मेड़ता के समीप दरिया साहब के समाधि स्थल से, मेड़ता में ही चतुर्भुज मंदिर के निकट रामसभा से नागौर के समीप सिणोंद रामद्वारा में, नागौर के ही थांबायत रामद्वारा में, रामद्वारा अजमेर में, जयपुर स्थित नरेना में दादूपीठ से मीरां संबंधी पदों की हस्तलिखित प्रतियां मिलती हैं। यही से 'मीरांबाई की पदावली' नाम से मीरां की रचना प्राप्त हुई है जिसका लिपिकाल, लिपिकर्ता एवं लिपिस्थल अज्ञात है।[4] जयपुर के सीटी पैलेस के पोथीखाने से भी 'मीरां जी री लीला' व 'मीरां पद टीका' नामक ग्रंथ मिले हैं

जिनका लिपिकाल एवं लिपिस्थल अज्ञात है।[5] इन हरजसों, भजनों व गीतों की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इनमें से अधिकांश का लिपिस्थल, लिपिकाल तथा लिपिकर्ता का नाम दिया गया है जबकि इनके मूल लेखक कोई और बताए गए हैं। राजपूताने से अलग-अलग भागों में पाए गए इन हरजसों, भजनों व गीतों से यह तथ्य साफ तौर पर उभरकर सामने आता है कि इन पदों के संकलन, संपादन व लिपिकरण की प्रक्रियां में अनेक परिवर्तन हुए हैं। प्राय: यह भी देखा गया है कि लोक में जो पद, गीत, भजन व हरजस प्रचलित थे प्राय: उनका ही संकलन करके हस्तलिखित प्रतियां तैयार कर ली गई हैं। इस आधार पर इनके रचयिता मूल लेखक न होकर लोक कवि एवं गायक हुए न कि मूल लेखक। इसी प्रकार स्थानीय शब्दों का बाहुल्य भी यह सिद्ध करने के लिए प्रर्याप्त है कि इन गीतों, भजनों, हरजसों के वास्तविक रचयिता स्थानीय लोकगायक एवं कवि ही थे। यह सत्य होते हुए भी कि मीरां के नाम से प्रचलित पद स्वयं मीरां में न रचकर लोक ने इसकी रचना की है फिर भी इनका इस रूप में महत्व है कि इनके रचयिता मीरां के व्यक्तित्व से प्रभावित थे अत: इस प्रकार मीरां के नाम से प्रचलित पद मीरां की विचारधारा का दसमांश ही सही पर उसका प्रतिनिधित्व अवश्य करते हैं। परवर्ती युग का जनमानस मीरां को किस रूप में देखता था एवं सैकड़ों वर्षों के लम्बे अंतराल में मीरां की छवि धीरे-धीरे किस रूप में लोकप्रसिद्ध हो गई थी इसका परिचय भी इन पदों से हो जाता है। क्या इसे कम आश्चर्यपूर्ण बात कही जाएगी कि राम के पूजा स्थलों से कृष्ण भक्त मीरां के पद मिल जाएंगे जब कि अन्य कृष्ण भक्तों के भजन-गीत इन राम के मंदिरों व पूजा स्थलों में प्राय: नदारद रहेंगें। और तो और गुरु ग्रंथ साहिब की पटियाला स्थित भाई बानों की प्रति में भी मीरां का एक पद मिल जाता है।[6] यदि मीरां को व्यापक लोकस्वीकृति एवं लोकस्नेह नहीं मिला होता तो ऐसा संभव नहीं था। मीरा के नाम पर प्रचलित पद भले ही मीरां ने नहीं रचे हो तथापि मीरां की लोकप्रियता एवं जनमानस पर उसका प्रभाव तो सिद्ध हो ही जाता है।

मीरां वस्तुत: राजनीतिज्ञ-कूटनीतिज्ञ एवं सामाजिक आंदोलन की प्रणेता थी भक्ति को बतौर साधन उसने उपयोग में लिया था किन्तु जनमानस से उसका परिचय बतौर कृष्ण भक्त के रूप में ही था। जनता वहीं जानती समझती थी जो उसे दिखाई देता था। अत: राजपूताने के लोगों एवं शेष भारत ने मीरां को भक्त रूप में ही याद रखा। दुर्ग की

ऊंची दीवारें, दुर्ग में रहने वाली स्त्रियों के लिए ही नहीं वरन् दुर्ग के बाहर रहने वाली आम जनता के लिए भी अभेद्य थी। जहां दीवार के उस पार आम जनता पर लगान वसूली के नाम पर अत्याचार होता था वही दीवार के इस पार मर्यादा के नाम पर स्त्रियों पर अत्याचार होता था। ऐसी स्थिति में दुर्ग की दीवारों को लांघ पाने में असमर्थ आम जनता दुर्ग के षड़यंत्रों एवं अत्याचारों से बिल्कुल बेखबर थी ऐसे में यह कैसे संभव था कि आम जनता चित्तौड़ दुर्ग में मीरां की विडम्बनापूर्ण स्थिति को समझ पाती? लोक तो केवल इतना जानता था कि मेवाड़ की युवरानी मीरां कुशाग्र बुद्धि, गरीबों की हितचिंतक, कृष्ण भक्त एवं कृष्ण के प्रेम में दिवानगी की हद तक पागल है एवं मीरां के देवर महाराणा मेवाड़ को उनकी यह कृष्ण भक्ति बिल्कुल पसंद नहीं है। पर्दे के पीछे की सच्चाई तो दुर्गवासी ही जानते थे जो मीरां के संघर्ष, विडम्बनापूर्ण स्थिति एवं महल में उसके प्रतिरोध को निकटता से देख रहे थे। इसी कारण से मीरां का जहां कहीं भी अन्य भक्तों द्वारा अथवा लोक में जो कुछ उसका उल्लेख हुआ है वह भक्त के रूप में ही हुआ है न कि राजनीतिज्ञ-कूटनीतिज्ञ एवं राजविद्रोहिणी के रूप में क्यों कि दुर्ग के भीतर की सच्चाई तो मीरां ही जानती थी लोक तो वही जानता था जो दुर्ग के बाहर आम जनता को मीरां के बारे में बताया -समझाया जाता था। आम जनता मीरां को भक्त ही मानती थी एवं मीरां के नाम पर आम जनता में जो पद प्रचलित थे वे मीरां को भक्त मानकर ही रचे गए थे न कि उसे कूटनीतिज्ञ एवं राजविद्रोहिणी समझकर। इस आधार पर भक्त मीरां की छवि को ध्यान में रखकर लोक में अनेक पद प्रचलित हो गए परन्तु मीरां की बिडम्बनापूर्ण स्थिति दर्शाने वाला एक भी पद लोक को स्वीकार नहीं हुआ। इसे विडम्बना ही कहा जाएगा कि जिन पदों की मीरा ने रचना ही नहीं की उन्हीं पदों को मीरां के अधिकांश आलोचक अंत: साक्ष्य के रूप में पेश करते हुए मीरां के पद घोषित कर देते हैं एवं फिर एक सिलसिला शुरू होता है मीरां की एक ऐसी छवि निर्माण का जिसमें वह पागल थी, दीवानी थी, भक्तिमती थी एवं त्याग की महान मूर्ति थी जैसे कि आम तौर पर स्त्रियों से समाज अपेक्षा करता है। परन्तु आलोचकों को तब बात बिगड़ती नजर आती है जब उन्हें प्रमाणिक तौर पर यह मानने के लिए बाध्य किया जाता है कि मीरां के पद मीरां ने नहीं वरन् लोक ने रचे हैं जिसे मीरां का कथन कहना सर्वथा अनुमचित है। ऐसी स्थिति में जब कि मीरां की एक

दूसरी ही छवि निर्मित होने लगती है एवं आलोचकों को अपना आलोचना कर्म निरर्थक लगने लगता है तब प्रयास होता है कुछ नई किवदंतियां गढ़ने एवं ढूंढ़ने का कि मीरां स्वयं ने भले ही पद नहीं रचे हो परन्तु उनकी ललिता नाम की किसी दासी ने उसका संपादन, संकलन एवं लेखन किया था। यदि यह सत्य भी होता है तब प्रश्न पैदा है कि ललिता ने अपने पदों में मीरां की भक्ति को ही क्यों प्रमुख स्थान दिया एवं उसने मीरा के दुर्ग में प्रतिरोध, संघर्ष तथा दुर्ग की आंतरिक राजनीति की पोल खोलने वाले भक्ति से इतर पदों की रचना क्यों नहीं की जैसा कि उस समय के दरबारी प्रशस्ति गायक किया करते थे। ललिता ने ऐसे किन्हीं पदों की रचना की होती तो अवश्य ही भक्ति के पदों के साथ-साथ दरबारी इतिहास भी आता अथवा मुख्य रूप से दरबारी इतिहास व षड़यंत्र ही आता एवं गौण रूप में मीरां की भक्ति की चर्चा होती। नि:संदेह लोक में प्रचलित भक्ति पदों के आधार पर मीरां को भक्त साबित करना किसी दुर्घटना से कम नहीं है। मीरां के नाम पर प्रचलित पद किस हद तक मीरां या मीरां के किसी समकालीन द्वारा रचे हो सकते हैं इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि काशी तथा मध्य गुजरात के डाकोर नामक स्थानों से प्राप्त मीरां के पद सबसे अधिक प्राचीन माने जाते हैं जिनका रचनाकाल मीरां की मृत्यु के सैकड़ों वर्ष पश्चात् ठहरता है जिन्हें कई बार संशोधित एवं संपादित किया गया था। इन प्रतियों में सबसे प्राचीन प्रति सम्वत् 1642 की है।[7] निश्चय ही मीरां की मृत्यु से लेकर सम्वत् 1642 तक के लम्बे अंतराल में मीरां के नाम पर पद प्रचलित पदों में अनेक परिवर्तन एवं परिवर्द्धन किए गए होंगे फिर ये पद मीरां से किस हद तक संबंधित हैं यह भी एक विवादास्पद बिन्दु है जब कि डाकोर व काशी की प्रतियों की भाषा में स्पष्ट अंतर दिखाई देता है। मीरां ही नहीं कबीर, विद्यापति आदि अनेक कवि-भक्त भी इस दुर्घटना के शिकार हुए है। लोक में उनके नाम पर अनेक पद प्रचलित हो गए यद्यपि इससे उन्हें लोकप्रसिद्धि तो मिली किन्तु उनकी मूल विचारधारा का संरक्षण-संवर्द्धन नहीं हो पाया। दरभंगा, मधुबनी, जयनगर, जनकपुर आदि मिथिला क्षेत्र की यात्रा के दौरान पता चला कि जन्म-संस्कार से लेकर विवाह-संस्कार तक एवं आगे मृत्यु पर्यन्त विभिन्न अवसरों पर मिथिला में मैथिल कोकिल के पद गाए जाते हैं। कोई भी पद जो विद्यापति के पदों जैसा हो उसके अंत में मिथिला वासी 'भनई विद्यापति' (अर्थात् विद्यापति का कहना

है) जोड़कर उस पद को विद्यापति का पद घोषित कर देते हैं। अब भले ही उस पद की रचना लोक में हुई हो परन्तु वह पद विद्यापति का हो जाता है। मीरां भी इसकी अपवाद नहीं है, ऐसा कोई भी पद जो मीरां की विचारधारा एवं जीवनवृत्त से संबंधित हो उसे मीरां का पद बताकर मीरां के नाम से प्रचलित कर लिया जाता है।

मीरां के पदों में सैकड़ों वर्षों से लगातार होते आए परिवर्तन के बावजूद उसके कुछ पदों के शब्दों में भले ही परिवर्तन आ गए हो किन्तु उसकी मूल भावना आज भी संरक्षित है। मूल भावना की बजाय यहां मूलकथा कहना ज्यादा उचित रहेगा, जिसका परिचय लोक को था। अर्थात् मीरां के जीवनवृत्त से संबंधित कथाएं जिनकी जानकारी एवं प्रसिद्धि लोक में थी उनसे संबंधित जो पद प्रचलित हैं उन्हें मीरां के अधिक निकट समझना चाहिए। इस अधार पर मीरां से संबंधित वे पद जो लोक में मीरां के बारे में प्रचलित किवदंतियों एवं उसके जीवनवृत्त की घटनाओं के अधिक निकट प्रतीत होते हैं उन्हें मीरां से संबंधित पद कहना अपेक्षाकृत अधिक उचित है। वे पद जो केवल भक्ति पद हैं उन्हें मीरां से संबंधित करना अपेक्षाकृत अधिक संदेहास्पद है। यहां यह ध्यान रखना भी उचित होगा कि भक्ति के वे पद जो गौण रूप में जीवनसंघर्ष अथवा मीरां के जीवनवृत्त का परिचय देते हैं प्रामाणिकता के अधिक निकट हैं भले ही उनका प्रधान विषय भक्ति ही हो।

मीरां के नाम पर प्रचलित पदों के पश्चात मीरां के जीवन से संबंधित अत्यंत महत्वपूर्ण जानकारी नाभादास के भक्तकाल से मिलती है। नाभादास अथवा नारायणदास जयपुर की गलता पहाड़ियों में रहते थे। मेवाड़ में मीरां को सत्ता प्रतिष्ठान एवं सत्ता से जुड़े प्रशस्तिगायकों तथा ब्राह्मण वर्ग जो स्वयं को भक्त कहते थे ने मीरां को किस हद तक तिरस्कृत किया इसका प्रमाण 'भक्तमाल' के मीरां संबंधी छप्पय से मिलता है। क्या इसे कम आश्चर्यपूर्ण कहा जाएगा कि मीरां संबंधी चर्चा मेवाड़ में न होकर मेवाड़ से सैकड़ों कोस दूर गलता की पहाड़ियों में होती है जहां मेवाड़ी सत्ता का भय न था। भक्तकाल में मीरां संबंधी छप्पय इस प्रकार है-

लोक-लाज, कुल-श्रृंखला तजि, मीरां गिरधर भजी।
सृदश गोपिका प्रेम प्रगट, कलियुगहिं दिखायौ।।
निरअंकुश अति निडर, रसिक-जस रसना गायौ।।

दुष्टनि दोष विचारि, मृत्यु को उद्दिम कीयौ।।
बार न बांको भयो, गरल अमृत ज्यों पीयौ।।
भक्ति-निशान बजाय कै, काहू ते नाहिन लजी।।
लोक-लाज-कुल-श्रृंखला तजि, मीरां गिरधर भजी।।[8]

गुरुदेव[9] का मानना है कि नाभादास का यह छप्पय मीरां के जीवनवृत का सूत्र वाक्य है तो उचित ही है किन्तु नाभादास का भी मीरां से परिचय भक्त के रूप में ही था। नाभादास मीरां के बारे में वही कुछ जानते थे जो उन्होंने लोक तथा भक्तों-संतों के माध्यम से सुना व जाना था। अतः मीरां के जीवन से संबंधित भक्तमाल का यह छप्पय सूत्रवाक्य अवश्य है किन्तु संपूर्ण वाक्य नहीं। स्वयं नाभादास भी चित्तौड़ दुर्ग की मीरां को नहीं जानते थे जो भक्त के अलावा और बहुत कुछ थी एक ऐसी कुशाग्र बुद्धि बाला जिसने न सिर्फ हाड़ाओ की सत्ता को चुनौती दी थी वरन् मेवाड़ में एक ऐसा आंदोलन भी खड़ा किया जिसके पश्चात् स्त्रियां अपने अधिकारों को लेकर अधिक सजग होने लगी।[10] नाभादास का उक्त छप्पय इस अर्थ में महत्वपूर्ण है कि मीरां के जीवन से संबंधित उपलब्ध लिखित स्रोत सामग्री में यह छप्पय सबसे प्राचीन एवं विश्वसनीय है जो सही-सही जानकारी देता है। इस छप्पय से मीरां के संबंध में जो जानकारी मिलती है वह यह है कि मीरां मध्यकालीन राजाधिकारियों की भांति निरकुंश एवं अति निडर थी जैसा कि आम तौर उस युग से राजसत्ता को धारण करने वाले हुआ करते थे। उन्होंने लोकलज्जा को त्याग दिया था एवं सत्य की रक्षा के लिए उठ खड़ी हुई थी। मीरां ने कुल रूपी बेड़ियों को त्याग दिया था। यहां कुल से तात्पर्य सिसोदिया राजवंश से है जो कि मेवाड़ वाले थे। कुल की श्रृंखला त्यागने का साफ अर्थ राजकुल को त्याग कर लोक के निकट आने का प्रयास है। छप्पय की शेष पंक्तियां मीरां के भक्त रूप का उल्लेख करती हैं जैसे कि मीरां गिरधर को मानती थी एवं उनका प्यार गोपियों के सदृश प्यार था न कि भक्त-भगवान के रिश्ते के सृदश। इसी छप्पय में एक पंक्ति है- ''रसिक-जस'' रसना गायो। आलोचकों ने इसका अर्थ कृष्ण के यश के रूप में किया है एवं रसिक का अर्थ कृष्ण किया है किन्तु ध्यान देने वाली बात यह है कि नाभादासजी ने हरिजस न कहकर रसिकजस कहा है जब कि उस समय हरि शब्द का ही व्यापक प्रयोग होता था किन्तु उन्होंने रसिक शब्द का प्रयोग किया। इससे

भी साफ है कि मीरां के लिए कृष्ण रसिक थे एवं रस अर्थात् शृंगार (भक्ति नहीं) से परिपूर्ण यशोगान मीरां ने किया। इस अर्थ में मीरां काव्य का प्रधान रस् शृंगार ठहरता है विशेषत: वियोग शृंगार परवर्ती रीतिकालीन कवियों का भी यह प्रधान रस था जहां भक्ति के स्थान पर व्यक्ति को अधिक महत्व दिया जाता था। इस प्रकार मीरां सामंतवाद के अग्रिम विकास व्यक्तिवाद की प्रणेता भी नजर आती है जिन्होंने सामंतवाद का मुखर विरोध किया था। नि:संदेह उपर्युक्त निष्कर्ष और अधिक अध्ययन की मांग करता है किन्तु इतना तो सत्य है ही कि कृष्ण मीरां के ईश्वर से अधिक प्रेमी थे एवं मीरां भक्त से ज्यादा उनकी गोपिका या प्रेमिका थी जैसा कि नाभादास अपने छप्पय में उल्लेख करते हैं। छप्पय की अगली पंक्तियां मीरां के लोकप्रसिद्ध व्यक्तित्व एवं राजनीतिक संघर्ष का संकेत करती हैं जिसमें संकेत किया गया है कि मीरां को मारने के कई प्रयास सत्ता प्रतिष्ठान द्वारा किए गए क्यों कि उनको यह लगता था कि मीरां की भक्ति अनुचित है। नि:संदेह मीरां को मारने का प्रयास चित्तौड़ दुर्ग की आंतरिक राजनीति के कारण हुआ था। आगे बताया गया है कि मीरां का दुष्ट लोग बाल भी बांका न कर सके व विष भी अमृत हो गया। उस समय उनके बारे में ऐसा ही लोकप्रसिद्ध था। अंत में नाभादास जी मीरां को एक भक्त बताते हुए कहा है कि उन्होंने भक्ति रूपी वाद्य बजा लिया था इसलिए न तो वे किसी से डरी एवं न ही किसी से लज्जा ही की। नि:संदेह मीरां अपने संघर्ष एवं उद्देश्यों को लेकर दृढ़ थी।

भक्तमाल में नाभादास के उक्त छप्पय के पश्चात् भक्तमाल की प्रियादास कृत 'भक्तिरस-बोधिनी' टीका को महत्वपूर्ण माना जा सकता है। नाभादास जयपुर में रहते हुए मेवाड़ से फिर भी अपेक्षाकृत अधिक निकट थे किन्तु प्रियादास जी जो कि नाभादास जी से संपर्क में थे किन्तु मेवाड़ की भूमि एवं घटनाओं से पर्याप्त दूरी पर थे अत: मीरां संबंधी उनका वर्णन लोक के माध्यम एवं साधु-संतों के माध्यम से मीरां के संबंध में पहुंची हुई सूचनाओं पर ही आधारित था। अत: भक्तमाल की प्रियादास जी कृत 'भक्तिरस-बोधिनी' टीका में मीरां संबंधी जो भी उल्लेख मिलता है उसमें मुख्यत: लोकप्रचलित किवदंतियों का ही आश्रय ग्रहण किया गया है जैसे कि मीरां बचपन से ही कृष्ण भक्त थी एवं शादी के भांवर लगते समय भी उनका मन कृष्ण में ही खोया हुआ

था। ससुराल आने पर मीरां ने देवी की आराधना करने से इनकार किया, ननद ने मीरां को साधु संगत छोड़ने के लिए समझाया किन्तु मीरां नहीं मानी, मीरां को मारने के लिए विष का प्याला पीने के लिए दिया गया परन्तु वह विष मीरां का कुछ भी न बिगाड़ सका। मीरां महल के एकांत में, अदृश्य कृष्ण से मिलती थी एवं किसी पुरुष की आशंका में राणा तलवार लेकर मीरां महल पहुंचे। किसी कुटिल साधु ने स्वयं को कृष्ण बताकर संभोगेच्छा प्रकट की एवं मीरां ने सबके सामने संभोग की शर्त रखकर कुटिल साधु को बेनकाब कर दिया। मीरां के रूप की चर्चा सुनकर बादशाह अकबर तानसेन के साथ मीरां से मिलने आए। मीरां वृंदावन में आकर जीव गोस्वामी जी से मिली थी। अंत में नए महाराणा ने मीरां को मनाकर वापस मेवाड़ लाने के लिए दूत भेजे। ऐसी अनेक घटनाएं, कथाएं एवं किवंदतियां जो कि लोक में मीरां के संबंध में प्रसिद्ध थी, प्रियादास जी ने उनका उपयोग अपनी 'भक्तिरस-बोधिनी' टीका में किया है। इस टीका से जहां हमें इस बात का पता तो चलता ही है कि प्रियादास जी के समय दुर्ग से बाहर मीरां की लोकमानस एवं जनमानस में क्या छवि थी, साथ ही साथ इससे कुछ महत्वपूर्ण जानकारियां भी मिलती है जैसे कि- "मेरतौ जन्मभूमि, भूमि हित नैन लगे" टीका के इस वाक्य से मीरां की जन्मभूमि मेड़ता प्रमाणित होती है। यह भी संभव है कि मेरतौ से प्रियादास जी का तात्पर्य मेड़ता शहर न होकर मेड़ता प्रदेश हो। इसी पंक्ति में प्रियादास जी एक अन्य महत्वपूर्ण बात बताते हैं कि मीरां के 'भूमि हित नैन लगै' भूमि से यहां सीधा-सीधा तात्पर्य मेवाड़ की भूमि ही हो सकता है यदि ऐसा है तब यह मानना पड़ेगा कि मीरां ने एक कुशल राजनेता की तरह भूमि अर्थात् लोगों के हित के कार्य सम्पादित करना आरंभ कर दिया था। इस तथ्य की पुष्टि मेवाड़ क्षेत्र में प्रचलित कुछ किवदंतियों से भी होती है। यदि ऐसा है तो मीरां के कुशल राजनेता होने में कोई संदेह शेष नहीं रह जाता। जहां तक भांवर लेने के समय उल्टे भांवर लेने अथवा कृष्णमूर्ति को बीच में रखकर भांवर लेने का प्रश्न है यह पूर्णतया लोक द्वारा गढ़ी गई कहानियों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं आज भी राजपूतों में भांवर लेते समय चंवरी स्थल पर आम जनता का आना तो दूर निकट सगे संबंधियों तक का आना निषेध है। ऐसी स्थिति में मेवाड़ कुंवर के भांवर में क्या हुआ था और क्या नहीं कहना आसान नहीं है, निश्चय ही इस प्रकार की कथाएं शुचितावादियों द्वारा गढ़ी गई कहानियां ही

हैं जो एक स्त्री के दो या अधिक प्रेम एवं विवाह-पुनर्विवाह को अनुचित मानते हैं। इसीलिए ये शुचितावादी राणा के पश्चात् कृष्ण के साथ मीरां के दूसरे प्रेम को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं अत: इस प्रकार की किवदंतियां गढ़कर प्रसिद्ध कर दी गई। मीरां द्वारा देवी पूजा से इंकार जहां मीरां के कृष्ण के प्रति प्रगाढ़ संबंध का संकेत करती है वही मीरां द्वारा कृष्ण पूजा की अनिवार्यता की मजबूरी भी बताती है अन्यथा तुलसी जैसे भक्त तो एक नहीं अनेक देवताओं की आराधना में लगे हुए थे यदि मीरां ऐसा करती तो उसकी प्रतिरोधी क्षमता ही प्राय: सामाप्त हो चुकी होती जिससे मीरां ने कृष्ण भक्ति का आश्रय ग्रहण करके परवान चढ़ाया था। विषपान की घटना का भी टीका में उल्लेख किया गया है इस प्रकार की घटना का वर्णन मीरां से संबंधित अधिकांश विवरणों में उपलब्ध होता है। इससे अनुमान होता है कि इस प्रकार की कोई घटना निश्चित रूप से हुई होगी यद्यपि इस घटना को समझने व इसके गहन विश्लेषण की आवश्यकता है जो आध्यात्मिकता व अनुकंपा के आवरण से निकलकर वैज्ञानिक दृष्टिकोण को प्रश्रय दे। इसके साथ ही कुटिल साधु की घटना, अकबर-तानसेन का मीरां से मिलन का प्रसंग, अदृश्य कृष्ण से मीरां से मिलने का लोकप्रसिद्ध विश्वास एवं जीवगोवस्वामी से मिलने की घटना की जानकारी भी हमें इस टीका से मिलती है। इस टीका से यह भी साफ तौर पर पता चलता है कि मीरां अत्यंत रूपवती थी, प्रभावशाली व्यक्तित्व की थी तथा अंतत: नए महाराणा ने मीरां को द्वारिका से पुन: मेवाड़ लौटा लाने के लिए दूत भेजे थे। प्रियादास जी की 'भक्तिरस बोधिनी' टीका में मीरां संबंधी अंश इस प्रकार है-

''मेरतौ'' जन्मभूमि, भूमि हिन नैन लगे,
पगे गिरिधारीलाल पिता की के धाम मैं।
राना कै सगाई भई, करी ब्याह सामा नई,
गई मति बूड़ि, वा रंगीले घनश्याम मैं।।
भांवर परत, मन सांवरे सरूप मांझ,
तांवरे सी आवें चलिबे कौ पति ग्राम मैं।
पूछैं पिता माता ''पट आभरन लीजियै जू'',
लोचन भरत नीर कहा काम दाम मैं।।

"देवौ गिरिधारीलाल, जौ निहाल कियौ चाहौ,
और धन माल सब राखियै उठाय कै"।
बेटी अति प्यारी, प्रीति रंग चढ़यो भारी,
रोय मिली महतारी, कही "लीजियै लढ़ाय कै"।।
डोला पधराय, दृग-दृग सौं लगाय चलीं,
सुख न समाय चाय, प्रानपति पाय कै।
पहुंचीं भवन सासु देबी पै गवन कियौ,
तिया अरु अब गंठजौरो कर्यो भाय कैं।।2।।
देबी के पुजाबके कौं, कियौं लै उपाय सासु,
बर पै पुजाइ, "सुनि बधू पूजि" भाखियै।
बोली "जू बिकायौ माथौ लाल गिरिधारी हाथ",
और कौ न नवै, एक वही अभिलाखियै।।
"बढ़त सुहाग याके पूजे ताते पूजा करौ,
करौ जिनि हठ सीस पायनि पै राखियै"।
कही बार-बार "तुम यही निरधार जानौ,
वही सुकुमार जापै वारी नाखियै"।।3।।
तब तौ खिसानी भई, अति जरि बरि गई,
गई पति पास "यह बधू नहीं काम की।
अब ही जवाब दियौ, कियौ अपमान मेरौ,
आगे क्यों प्रमान करै? भरै स्वास चाम की।।
राना सुनि कोप करयौ, धर्‌यौ हिये मारिबोई,
दई ठौर न्यारी, देखि रीझी मति बाम की।
लालनि लड़ावै गुन गाय कै मल्हावै साधु,
संग ही सुहावै, जिन्हें लागी चाह श्याम की।।4।।
आय कै ननद कहै "गहै किन चेत भाभी?
साधुनि सौं हेतु में कलंक लागै भारियै।

राना देसपती लाजै, बाप कुल रती जात,
मानि लीजै बात बेनि संग निरवारियै''।।
''लागे प्रान साधू संत, पावत अनन्त सुख,
जाको दुख होय, ताको नीके करि टारियै''।
सुनिकै, कटोरा भरि गरल पठाय दियौ,
लियौ करि पान रंग चढ़यौ यों निहानियै।।5।।
गरल पठायौ, सो तौ सीस लै चढ़यौ, संग,
त्याग विष भारी, ताकी झार न संभारी है।
राना नै लगायौ चर, बैठे साधु ढिंग ढर,
तब ही खबर कर, मारौ यहै धारी है।।
राजै गिरिधारीलाल, तिनहीं सों रंग जाल,
बोलत, हंसत ख्याल, कान परी प्यारी है।
जाय कै सुनाई, भई अति चपलाई, आयौ,
लिये तरवार, दै किवार, खोलि न्यारी है।।6।।
''जाके संग रंगभीजि, करत प्रसंग नाना,
कहां वह नर गयौ बेगि दै बताइयै''।
''आगे ही बिराजै, कछू तोसों नहीं लाजै, अभूं,
देखि सुख साजै, आंखे खोलि दरसाइय''।।
भयोई खिलानौ राना, लिख्यौ चित्र भीत मानो,
उलटि पयानौ कियौ, नेकु मन आइयै।
देख्यौ हूं प्रभाव ऐ पै भाव में न भिद्यौ जाई,
बिना हरिकृपा कहौ कैसे करि पाइपै।।7।।
विषई कुटिल एक भेष धरि साधु लियौ,
कियौ यों प्रसंग ''मोसों अंग संग कीजियै।
आज्ञा मोंको दई आय लाल गिरिधारी'', ''अहो,
सीस धरि लई, करि भेजन हूं लीजियै''।।

संतनि समाज में बिछाय सेज बोलि लियौ,

"संक अब कौन की निसंक रस भीजियै"।

सेतु मुख भयौ, विषैभाव सब गयौ, नयौ,

पांयन पै आय, "मोकों भक्तिदान दीजिए"।।8।।

रूपी की निकाई भूप 'अकबर' भाई हिये,

लिये संग तानसेन देखिबे को आयो है।

निरखि निहाल भयो, छबि गिरिधारीलाल,

पद सुखजाल एक, तब ही चढ़ायो है।।

वृन्दावन आई, जीवगुसांई जू सों मिली झिलीं,

तियां मुख देखिबे को पन लै छुटयो है।

देखी कुंज कुंज लाल प्यारी सुखपंज भरी,

घरी उर मांझ, आय देस, बन पायो है।।9।।

रानी की मलीन मति, देखि बसी द्वारावति,

रति गिरिधारीलाल, नित ही लड़ाइयै।

लागी चटपटी भूप भक्ति कौ सरूप जानि,

अति दुख मानि, बिप्र श्रेणी लै पठाइयै।।

बेगि लैकै आवौ मोकों प्रान दै जिवावौ अहो,

गये द्वार धरनौ दै बिनती तौ सुनाइयै।

सुनि बिदा होन गई राय रणछोर जू पै,

छांडौं राखौ ही न लीन भई नहीं पाइयै।।10।।[11]

वैष्णवदासजी, प्रियादासजी के पौत्र थे वे निम्बार्क संप्रदाय से संबंधित एवं वृदांवन के रहने वाले थे। उन्होंने अपने दादा द्वारा लिखित टीका को और अधिक स्पष्ट रूप से व्याख्या करके समझाया है। कोई नई जानकारी नहीं दी है। भक्तों की मीरां के संबंध में जो थोड़ी बहुत टिप्पणियां उपलब्ध हैं उन समस्त टिप्पणियों में मूलतः मीरां को भक्त के रूप में याद किया गया है, राजमहल से संबंधित किसी घटना का कहीं कोई उल्लेख नहीं

है। वैष्णवदास जी कृत 'भक्तमाल का दृष्टान्त' की इसका अपवाद नहीं है। वह दृष्टांत इस प्रकार दिया गया है।

भक्तमाल छप्पय - मीराबाई जू प्रसंग

(क) मीरां गिरधर भजी।। मीरां को गीरधर भज्यो।। न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः।। आसामहो चरणरेणजुषामहं स्या वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।।

(ख) सद्स गोपिका प्रेमः जैसे साहुकार का लड़का है भीत फोरि आया है।। चोर कहना नहिं।। कह भी चुके।। ऐसे गोपिन्ह ते अधिक नहीं पर अधिक है।।

टीका-कवित्त

(1) गई मति बूड़ि वा रंगीले घनश्याम मैं।। मारु।।

लोना सांवल नागर सागर व मुरली धुनि गरजै।।
वल्लभ रसिक ताने लहरै गावत आवत सुर परजै।।
मोर पक्ष करहु लैहु लैक लगी पूतरी लौं बरजै।।
रूपक हर हरि आन आव जनि नाव धरम की धरजै।।1।।
इन नैननि मधि मोहन सोहन मूरति आनि अमानी।।
धीरज धरम सरम सब भूल भूली नियम कहानी।।
वल्लभ रसिक कोउ कछु भाषौ मैं नेक न मन में आनी।।
हिय अटकी अटकी चटकीली पाग जु सुरंग सुहानी।।2।।

(2) ..... टिप्पण नही है)

(3) देवी के पूजाइबे को।।

रज्यंति जं तवस्तत्र स्थान राजं गमा अपि।।
नंद गोपसुतं देवी पति में कुरु ते नम।।

गोपिन को भगवत् प्राप्ति की जिज्ञासा है। इनके साक्षात्कार पति श्री कृष्ण होय रहे हैं।

(4) अति जर वर गई।।

रही कैसे।। जैसे रसी (रस्सी) जरै।। वाको आकार रहै।। ऐसे रही।। जिनै लागी चाह स्याम की।। कृष्ण भक्त नाते सत्संग करै।। वेगि संग निरवारियै।।

जिनकी देह नेह परिपूरन ते जगमगात जग माहीं।।

जिन दरसै तिनि परसै चिकने रोम रोम हैं जाहीं।।

नर पशु दाग लगत उर जिनकी बातैं सुनत डेंराहीं।।

वल्लभ रसिक निसंत अंक भरि-भरि तिनसौं लपटाहीं।।

(5) उदाबार्द नन्द सो कहा:

दोहा - मीन मारि जल धोई षाये अधिक पीयास।

x x x x x x

कवित्त - तूतो निसि बासर प्रान मोमे रहत तातें

विनती करत सो न क्यौं हू बिसरायबी।।

हौं तौ जरि जैहौं ज्वाल जालनि पै री मौपे

कैसे सहि जैहे बिरहाग की बलायबी।।

कहैं कवि चिंतामनि हे रे बयारि रूप

पाछले सनेह मोहि तहां पहुंचायबी।।

कीजियो उपाय सोई प्यारो धरै जहां पांय

षेह भये देह मरी तहां पहुंचायबी।।

जादसी भावना जत्रसी धी भवती तादृसी।। तुलयामि लवेनापि।।1।।

अर्चे विस्मोसिलाधी गुरुसुनरमति वैष्णवौ जाति बुद्धिः।।

अर्चावतारी पादाना वैष्णवौत्पति चिंतन।।

मात्र योनिपरीक्षयां तुल्यामाहु मनीक्षितां।।

(6) गरल पठाय दियो:

राना तो बड़ो भक्त है और तो भवत छुछि सो।।

चरनामृत देहै यह कटोरा भर देहै।।

(7) आखै षोलि दरसाईयौ:

राना ने रसाईनी को बांधा। रसाइन सीषा चाहै सो वह बतावै नहीं। नित्य मारने को उद्योग करै। रात्री को सखा का रूप करिकै सेवा करै। जीस रोज मारन की ठीक पड़ी आजू नै बताबै तो कल्हि मारौ। जिस रोजै सखा को बताया सो सेवा सो पाया। बिन सेबा चाहै तो नहीं।।

(8) संक अब कौन की:

चोरोजोनवनी तस्य जारोवल्लभजोषितां।।

ध्येय: सदैव साधूनां चोरजारसिरोमने।।

देस काल पात्र पाय विस ही य है।।

(9) रूप की निकाई भूप अकबर भाई:

बिलायत के पात्साह ने हिंद के पात्साह को लिख्यो कि अपने देश का मेवा सुन्दर सरूप होय सो लिखियो। तब लिखा वृजवासी नन्द ग्वाल को फरजंद एक कन्हैया नाम है जाकै रूप के ऊपर अनेक ईस्त्री बावली भई हैं। और टेडी एक फल बड़ा मेवा होय है सो पथिकन को बरबस अटकावै है। कहै कि षाय कैं जावो। सो उन्ह के मत मैं भी कन्हैया सुन्दर है। सो देखन अकबर पात्साह तानसेन समेत गीरधारी जी छवि को मगन होय गया।

(10) पद सुष जाल एक तब ही चढ़ायो है:

पद - प्यारी क चिहुर विथुरे मानौं धाराधर की स्याम घटा उनई।

ता मधि पुहुप छुटि परैं जैसे बड़ी-बड़ी बूंदै।।

ता मध्य मुक्ता मांग बग पांति तरुण अलक बिच बिच कौंधति विज्जु लता सी नेत्र कंजरी। पीक बोलत बोलै रुदै।।

लाला सारि हरि की रमधान सी घूंघट करि चली तरकै,

पीठ पाछै ते सोहै लाल मुनीया सी कंचुकी तनी की फूदै।।

मेहदी सुं आरक्त नर्ष वीर बहुटी सी, ऐसी पावस बनिता मिली।

मीरां लाल गीरधर कुं लै काम प्रीति हार गूदै।।1।।

यह पद तानसेन समेत अकबर आय चढ़ायो।।

(11) वृंदावन आय गोसांई-

इही बूझत फीरै वृंदावन में कोउ मसाल है।।

कोई ने कहा आजू सौ जीवगुसांई है।

तिया मुष देषवे को पन ले छुड़ायो है - माता स्वस्रा दुहिताच नोविवक्तासनं भवेत।।

बलवान् इंद्रिया श्रामंविद्वांममतिवकषति।

(12) रति गीरधारीलाल नित ही लड़ाइयै - कवित्त -

सांझ सबेरो अंधेरो उजेरो अकेले दुकेले वही रस छाक्यो।।

आइवो छोड़ो न तेरी गली को जो लोगन्ह वाक कुवाक हूं भाक्यो।।

दीन भयो हम सी न हूं सो आए कान्ह समान सबै करि छाक्यो।।

पौरि लौ आइकै अंग लषाय कै तै सुषदायक नीके न ताक्यौ।।1।।

आत्मानं चिंतये तत्र तासां मध्ये मनोरमां।।

रूपयोवनसम्पन्ना किशोरि प्रमदावति।।

दोहा - प्रेम एक एक चित्र सौ एकै संग बिकाइ।।

गंधी की सोधो नहीं जन जन हाथ बिकाइ।।

कबहूं रनकट प्रेम सो सीषो लाल विवेक।।

जैसो नौलष कावरू पै दरवाजो एक।।

(13) सुनि बिदा होन गई -

पद - राय श्री रनछोर दीजै द्वारिका को वास।।

संष चक्र गदा पदुम दरसै मिटै जम की त्रास।।

सकल तीरथ गोमती के रहत नित्य निवास।।

संष माल रिमांमी बाजै सदा सुख की रास।।

तज्यो देस रु बेसु हु तजि तज्यो राना राज।।

दास मीरा सरन गिरिधर तुम्है अब सभ लाज।।

(14) छाड़ौ राषौ ही न लीन भई -

पद - हे हरि हरहु जनकी भीर।

द्रोपती की लाज राषी तुम बढ़ायो चीर।।

भक्त कारन रूप नरहरि धरयो आय सरीर।।

हिरनकस्यप रूप नरहरि धरयो नाहिर धीर।।

बूड़ते गज ग्राह तारयो कियो बाहर नीर।

दास मीरां लाल गीरधर दुष जहां तहां पीर।।

पद- सुजन सुधि ज्यौं त्यौं लीजै।

तुम बिन मेरे और न कोई कृपा रावरी कीजै।।

दिवस व भूष रैन नहिं निद्रा येन तन पल पल छीजै।।

मीरा लाल गिरधर नागर अब मिली बिछुरन नहि कीजै।।

या पद की छाप परत संते रनछोड़ जू आपु मैं समाय लिया सदेही।।1।।[12]

राघौदास सुन्दरदास जी के शिष्य थे उनकी 'भक्तमाल' व 'टीका' प्रसिद्ध है इन कृतियों पर नाभादास की भक्तकाल का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। मीरां संबंधी राघौदास का वर्णन इस प्रकार है-

मीरांबाई को बरनन -

(मूल)

मूल छप्पय - लोक बेद कुल जगत सुख मुचि मीरां श्री हरि भजे।

गोपिन की सी प्रीति रीति कालिकाल दिषाई।

रसिकराय जस गाइ, निडर रही संत-सभाई।

रानै रोस उपाइ जहर कौ प्यालौ दीन्हों।

रोम षुस्यौ नहीं एक मांनि चरनामृत लीन्हौं।

नौबति भक्ति घुराई कैं पति सो गिरिधर ही सजे।

लोक बेद कुल जगत सुष मुचि मीरां श्री हरि भजे।

मनहर

राजमी की भक्ति न भावै काहू दुष्टन कौं,

मीरां भई वैष्णव जहर दीन्हो जानि कैं।

रानौ कहै मारै लाज, मारि डारौ यानि आज,

आप करै कीरतन, संत बैठे आनि कैं।।

प्रेम मधि पीयो विस, पद गाये अहर्निस,

भै न ब्याप्यौ नैकहूं, न लीन्हौं दुष मानि कैं।

राधौ कहै रानै मुषि, बैरी सब राज-लोक,

मीरांबाई मगन भरोसौ चक्रपांनि कैं।।1।।[13]

भक्तमालों की परम्परा में अंतिम उल्लेख राघौदास जी की भक्तकाल पर चतुरदास अथवा छत्रदास की टीका का किया जा सकता है। उन्होंने इस टीका में मीरां पर 10 सवैये लिखे हैं।

टीका (इंदव छंद)

माता पिता जनमीं पुर मेड़त प्रीति लगी हरि पोहर मांही।
रांनहि जाइ सगाइ करावत ब्याहन आवत भावत नांही।।
फेर फिरावत बा न सुहावत, यौं मन में पति साथि न जांहीं।
देने लगे पितमात आभूषन, नैंन भरे जल मोहि न चांहीं।।1।।
द्यौ गिरिधारिहि लाल निहारन बेस अभूषन बेग उठावौ।
माता पिता सु सुता अति है प्रिय रोय दये प्रभु लेहु लड़ावौ।।
पाइ महासुष देषत है मुख डोलहि मैं बयठाइ चलावौ।।
धांमहि पौंचत मात पुजावत सास करावत गांठि जुरावौ।।2।।
मात पुजाइ लई सुत मैं पुनि पूजि बहू अब सास कही है।
सीसे नवै मम श्री गिरिधारिहि आन न मानत नाथ वही है।।
होत सुहागिणि याहिक पूजत टेक तजौ सिर नाई मही है।
एक नवै हरि और न नावत मानत क्यूं नहिं बुद्धि वही है।।3।।
होइ उदास भरै उस सास गई पति पास बहू नहिं आछी।
मानत मैं अब फेरि गिनै कब केति कहौ फिरि आत न पाछी।।
रोस कर्‌यौ नृप ठौर जुदी दइ रीझि लई वह नाचन काछी।
नृत्य करै उर लाल धरै सतसंग बरै सब है जन साछी।।4।।
आइ नणंद कहै सुनि भाभिहि साधुन संग निवारि भजीजे।
लाजत है नृत तासु बड़ौ कुल लाजत द्वै वंश बेगि तजीजे।।
संत हमारहि जीवन मानस तारस द्वै कुल सत्य मनीजे।
जाई कही तब झैर पठावत लै चरनांमृत पांन करीजै।।5।।
सीस नवाई कै पीत भई विष संतन छोड़न है दुा भारी।
भूप कहै भृति चौकस राषहु आइ कनै जन बोलत मारी।।

स्यांमहि सौं बतलात सुनी अब जाइ कही अब है सत यारी।
सौ सुनिकैं तरबारि लई कर दौरि गयो पट पोलि निहारी।।6।।
बोलत हौस गयो कत मानंस देहु लषाइ न मारत तोही।
येर षरे कछु नांहि डरे चित लेत हरे किन बाहत मोही।।
भूप लजाइ रह्यौ जड़ होइर ऊठि गयो तजिकैं उर छोही।
देषि प्रताप न मानत आप रहै उर ताप करै हरि बोहि।।7।।
संतन भेष करौ विषई नर आइ कही मम संग करीजे।
लाल दई यह आइस जावहु मांनि लई अब भोजन लीजे।।
सेज बिछावन साधु सभा बिचि टेरि लियौ तब कारिज कीजै।
देषित ही मुष सेत भयो पगि जाइ नयौ अब सिष्षा मनीजे।।8।।
भूप अकबर रूप सुन्यो अति तानहिसेन लिये चलि आयौ।
देषि कुस्याल भयो छवि लालहि एक सबद्द बनाइ सुनायौ।।
जा बृज जीव मिली पन हौ तिय देषतनैं मुष ताहि छुड़ायौ।
कुजन कुंज निहारि बिहारिहि आइ रु देस बनैं बन गायौ।।9।।
भूपति बुद्धि असुद्ध लषी अति द्वारवती बसि लाल लड़ाये।
पेटि जलंध्र होत भयौ नृप जानि महादुष बिप्र षिनाये।।
लैकरि आबहु मोहि जिवावहु बेगि गये समचार सुनाये।
होन बिदा चलि ठाकुर पैं मुष मांहि लई तुछ चीर रहाये।।10।[14]

प्रियादास जी कृष्णचैतन्य संप्रदाय के अनुयायी थे जब कि उनके पौत्र वैष्णवदास जी का संबंध निम्बार्क संप्रदाय से था। नाभादासजी एवं प्रियादासजी के निकट संपर्क एवं विचारों के आदान प्रदान का भी उल्लेख मिलता है जब कि राघौदास के बारे में कहा जाता है कि उनका लेखन नाभादास जी की भक्तकाल से पर्याप्त प्रभावित था राघौदास जी का संबंध संत संप्रदाय से था। कुल मिलाकर निष्कर्ष यह निकलता है कि नाभादास, प्रियादास, वैष्णवदास, राघौदास तथा चतुरदास मध्यकालीन भक्ति की एक ही स्कूल के भक्त कवि थे। इस आधार उनकी विचार पद्धति में भी बहुत कुछ साम्य था भले ही वे भिन्न-भिन्न संप्रदायों एवं भक्तों से संबंधित थे तथापि भक्तों तथा भक्ति संबंधी दृष्टि में

ऊपरी भेद के होते हुए भी हृदयगत रूप से ये सभी भक्त कवि एक ही भावना का प्रतिनिधित्व करते थे। ऐसे में यह तथ्य एक नया प्रश्न यह भी खड़ा करता है कि क्यों केवल नाभादास स्कूल ने ही मीरां को टिप्पणी योग्य समझा, अन्य भक्तों व संतों ने क्यूं नहीं। यद्यपि तुलसी से लेकर कबीर तक सभी भक्त कवियों से मीरां के संबंधों की चर्चा हुई है परन्तु उनमें एक भी विश्वसनीय नहीं कहा जा सकता। संभव है तुलसी जैसे ब्रह्मणवादी तथा मीरां जैसी लोकप्रसिद्ध क्रांतिकारी व्यक्तित्व के मध्य पत्र-व्यवहार की चर्चा करना भी किसी विशिष्ट राजनीति का परिणाम हो।

भक्तमालों के रचयिता मेवाड़ की भूमि व मध्यकालीन सत्ता के आतंक से कोसों दूर ब्रजमंडल की भूमि में थे किन्तु जहां तक वल्लभ संप्रदाय का प्रश्न है वल्लभ संप्रदाय के व्यक्तिकत हित मेवाड़ की सत्ता के हितों से संबंधित थे और वल्लभ संप्रदाय के आराध्य श्रीनाथ जी को भी प्रगतिशील मुस्लिम धर्म के आतंक से बचकर स्वयं की रक्षा के लिए मेवाड़ राजवंश की शरण में आना पड़ा था। इसी मजबूरी के चलते वल्लभ संप्रदाय वालों ने सत्ताधारियों को प्रसन्न करने हेतु मेवाड़ की कुलवधू जो कि उनकी राय में कुलकलंक थी को रांड़ भी कहा। यह बात और है कि मीरां रांड (विधवा) होते हुए भी सदासुहागिन थी। उनका पति तो अजर-अमर था। 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' में मीरां संबंधी जो तीन उल्लेख मिलते हैं उनसे अनुमान लगाया जा सकता है कि वल्लभ संप्रदाय मीरां से किस हद तक नफरत करता था वजह चाहे जो कुछ रही हो वे मीरां की प्रसिद्धि से ईर्ष्या रखते थे अथवा मेवाड़ की सत्ता की चापलूसी करना चाहते थे परन्तु सत्य सही है कि वल्लभ संप्रदाय मीरां के प्रश्न पर पर्याप्त असहिष्णु था।

(1) गोविंद दुबे साचोरा ब्राह्मण तिनकी वार्त्ता

और एक समय गोविंद दुबे मीरांबाई के घर हुते तहां मीरांबाई सो भगवद्वार्ता करत अटके तब श्री आचार्यजी ने सुनी जो गोविंद दुबे मीरांबाई के घर उतरे हैं सो अटके हैं, तब श्री गोसाई जी ने एक श्लोक लिखि पठायो, सो एक ब्रजवासी के हाथ पठायो। तब वह ब्रजवासी चल्यौ सो वहां जाय पहुचौ। ता समय गोविंद दुबे संध्यावंदन करत हुते। तब ब्रजबासी ने आय के वह पत्र दीनो सो पत्र बांचि के गोविंद दुबे तत्काल उठे। तब मीरांबाई ने बहुत समाधान कीयो परि गोविंद दुबे ने फिर पाछे न देख्यो। प्रसंग।।2।।[15]

(2) अर्थ मीराबाई के पुरोहित रामदास तिनकी वार्त्ता

सो एक दिन मीराबाई के श्री ठाकुर के आगे रामदासजी कीर्तन करत हुते। सो रामदासजी श्री आचार्यजी महाप्रभून के पद गावत हुते, तब मीराबाई बोली 'जो दूसरो पद श्री ठाकुरजी को गावो' तब रामदासजी ने कह्यो मीरांबाई सों 'जो अरे दारी रांड यह कौन पद है? यह कहा तेरे खसम को मूड़ है। जा आज सें ये तेरो मुंहडो कबहूं न देखूंगौ' तब कहां से सब कुटुम्ब को लेके रामदासजी उठि चले। तब मीरांबाई ने बहुतेरो कह्यौ, परि रामदासजी रहे नाहीं, पीछे फिर के बाको मुख न देख्यो। ऐसे अपने प्रभून सों अनुरक्त भए सो वा दिन से मीराबाई को मुख न देख्यो, वाकी वृत्ति छोड़ दीनी, फेरि वाके गांव के आगे होय के निकसे नाहीं। मीराबाई ने बहुत बुलाए परि वे रामदासजी आये नाहीं, तब घर बैठ भेट पठई सोऊ फेरि दीनी और कह्यो जो रांड तेरो श्री आचार्य जी महाप्रभून ऊपर समत्व नाहीं जो हमको तेरी वृत्ति कहा करनी है। हमारे तो श्री आचार्यजी महाप्रभून सर्वस्व हैं, हम तो उनके हैं, उनके हैं, उन बिना हमारे सर्वस्व त्याग करनो, उनके चरणाबिंद को आश्ररू राखनो, ऐसी वृत्ति बहुतेरी होयगी। वे रामदास श्री आचार्यजी महाप्रभून के ऐसे कृपापात्र भगवदीय हैं, ताते इनकी वार्ता कहां तांई लिखिए।। प्रसंग 1।। वैष्णव54।।[16]

(3) अथ कृष्णदास अधिकारी तिनकी वार्त्ता

सो वे कृष्णदास शूद्र एक बेर द्वारिका गए हुते। सो श्री रणछोड़जी के दर्शन करिके वहां से चले। सो आपन मीराबाई के गांव आए। सो वे कृष्णदास मीराबाई के घर गए तहां हरिवंश व्यास आदिदे विशेषसह वैष्णव हुते। सो काहू को आये आठ दिन काहू को आये दश दिन काहू को आये पन्द्रह दिन भये हुते। तिनकी बिदा न भई हुती और कृष्णदास ने तौ आवत ही कही जो हूं तो चलूंगो तब मीरांबाई ने कही जो बैठो। तब कितनेक महौर श्रीनाथजी को देन लागी। सो कृष्णदास ने न लीनी और कह्यो जो तू श्री आचार्यजी महाप्रभून की सेवक नाहीं होत ताते तेरी भेंट हम हाथ ते छुवेंगे नाहीं। सो ऐसे कहिं के कृष्णदास उहां ते उठि चले। सो आगे सब आये। तब एक वैष्णव ने कह्यो जु तुमने श्रीनाथजी की भेंट नहीं लीनी। तब कृष्णदास ने कह्यो जो भेंट की कहा है। मीराबाई ने यहां जितने सेवक बैठे हुते तिन सबन की नाक नीचे करके भेट फेरी है। इतने इकठौरे कहां मिलते। यह हूं जानेंगे जो एक

बेर शूद्र श्री आचार्यजी महाप्रभून को सेवक आयो हुतो ताने भेंट न लीनी तो तिनके गुरु की कहा बात होयगी।[17]

उपर्युक्त वार्ता प्रसंग से मीरां के चरित्र के संबंध में जो बात उभर कर सामने आती है उससे पता चलता है कि मीरां एक उच्च कोटि की कुशाग्र बुद्धि चतुर महिला थी। वह मेवाड़ व आसपास के प्रदेशों में वल्लभों के प्रसार आम जनता में उनकी गहरी पैठ से भली भांति से परिचित थी अतः वल्लभों द्वारा अपमानित किए जाने के वावजूद उसने कोई प्रतिक्रियां व्यक्त न करके शांति बनाए रखी क्यों कि वल्लभों को अप्रसन्न करना न केवल राजनीतिक दृष्टि से अलाभकर था वरन इससे भक्त के रूप में उसकी प्रसिद्धि पर भी आंच आ सकती थी कारण कि ऐसी स्थिति में इस बात को लेकर बहस छिड़ सकती थी कि मीरां की भक्ति को कहां तक उचित कहा जा सकता है? और यदि ऐसा होता तो मीरां के प्रतिरोध एवं संघर्ष की दिशा भटक जाती एवं मीरां के लिए एक अप्रिय वातावरण की सृष्टि हो जाती। अतः मीरां ने एक चतुर राजनीतिज्ञ की तरह स्वयं को इस निरर्थक संघर्ष से बचाए रखा एवं लोक में अपनी प्रसिद्धि तथा भक्त के रूप में छवि को कायम रखा।

वल्लभ संप्रदाय के वार्ता साहित्य में दूसरा उल्लेख 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में आता है। यह उल्लेख अजब कुंवरि के प्रसंग में आता है।

अब श्रीगुसांईजी की सेवकिनी अजब कुंवरि बाई, मेवाड़ में सिंहाड गाम है तहां रहती, तिनकीवार्ता कौ भाव कहत हैं-

भावप्रकाश- ये राजस भक्त हैं। लीला में इन कौ नाम 'रूप-आधिनी' है। ये श्रीठाकुरजी, के रूप में आसक्त है। तातें श्रीठाकुरजी कौ वियोग सहि सकति नाहीं। ये 'सुभगा' तें प्रगटी हैं, तातें उनके भावरूप हैं।

वार्ता प्रसंग-1: सो वह अजबकुंवरि बाई बाल विधवा हती। सो मीरांबाई के पास रहती। सो मीरांबाई अजबकुंवरि बाई के नाम सिंहाड में रहती। और मीरांबाई के दूसरी सिंहाड हुती। परि अजबकुंवरि बाई और मीरांबाई एक ग्राम घर में रहती।

सो एक समै श्रोगुसांईजी सिंहाड पधारे। तब बाग में उतरे। तब मीरांबाई दरशन कों गई। तब अजबकुंवरि हूं साथ गई। तब श्रीगुंसाईजी कों अजबकुंवरि ने साक्षात् पूरन पुरुषोत्तम देखे। तब मन में आई, जो-हों इनकी सेवकिनी होऊ तो भली है। पाछें भेंट धरि कै दरशन करि

कै तुरत ही मीरांबाई तो फिरी। तब श्रीकुसांईजी ने कही, जो-यह भेंट तो हम नाहीं राखें। हमारे काम की नाहीं। तब और वैष्णव ने मीरांबाई सों कही, जो - ये तो अपने सेवक बिना काहू की भेंट राखे नाहीं है। ता पाछें भेंट फरि दीनी। जब अजबकुंवरि बाई ने कही, मीरांबाई सों, जो-तुम कहो तो हों इनकी सेवकिनी होंउं। तब मीरांबाई ने नाहीं करी। ता पाछें दोऊ घर कों गई। तब अजबकुंवरि बाई कों महा विरह-ताप भयो और ज्वर आयो। तब मीरांबाई ने पूछ्यो, जो-ताकों कहा भयो? अब ही तो आछी हती। तब अजबकुंवरि बाईने कह्यो, जो-हों तो श्रीगुसांईजी की सेवकिनी होंउंगी। मैं तो उन कों दरशन करत साक्षात् श्रीकृष्ण देखे। तातें ताप भयो। तब मीरांभाई ने कही, जो-तेरी इच्छा। पाछें अजबकुंवरि बाई सावधान होइ कै श्रीगुसांईजी सों बिनती कराई। जो-महाराजाधिराज! अजबकुंवरि बाई कहत हैं, जो-मौकों नाम दीजिए। तब श्रीगुसांईजी ने कृपा करि कै अजबकुंवरि कों नाम सुनायो। पाछें श्रीगुसांईजी कों बिनती करि कै अपने घर पधराए। पाछें श्रीगुसांईजी कों भली भांति रसोई करवाई। ता पाछें श्रीठाकुरजी कों भोग धरि कै पाछें। श्रीगुसांईजी ने भोजन किये। ता पाछें वैष्णव सेवक जो साथ के हते तिन कों महाप्रासद दियो। पाछें थारि कौ महाप्रसाद अजंबकुंवरि बाई कों दीनो। सो लेत मात्र सर्व ज्ञात स्फुर्त भयो। ता पाछें श्रीगुसांईजी उत्थान के समै गादी तकियान पर बिराज कै कथा सही। ता समै आत्मनिवेदन कौ प्रसंग कह्यो। सो अजबकुंवरि बाई सुन्यो। जब अजबकुंवरि बाईने श्रीगुसांईजी सों बिनजी कीनी, जो-महाराज! मोकों कृपा करि कै आत्मनिवेदन करवायो चाहिए। ता पाछें श्रीगुसांईजी ने विधपूर्वक आत्मनिवेदन करवायो। पाछें सर्व मार्ग की रीति शिखाई। ता पाछें श्रीगुसांईजी कों घनों आग्रह करि कै दिन चारि राखे। भली भांति सों सेवा करी। भली भांति सों सामग्री रसोई करवीत। ता पाछें श्रीगुसांईजी विजय करिवे कों बिदाय भए सो चले। तब तुरत ही अजबकुंवरि बाई कों विरह उपज्यो। सो अत्यंत आर्ति भई। प्राणांत होंन लाग्यो। तब दासी ने दोरि कै श्रीगुसांईजी सों पुकारि कै बिनती कीनी, जो-महाराज! अजबकुंवरि बाई ने प्रान जात हैं। यह सुनि कै श्रीगुसांईजी पाछें पांउ धारे। तब अजबकुंवरि बाई ने श्रीगुसांईजी के चरण स्पर्श करे, तब सावधान भई। तब श्रीगुसांईजी सों बिनती करी, जो-महाराज! राज के दरशन बिनु मोतें रह्यो नहीं जात है। मेरे प्रान रहेंगे नाहीं। तब श्रीगुसांईजी अपनी पादुका पधराय दिए। और श्रीमुख सों कहे, जो-तोकों जब विरह-ताप होंइ तब इनकौ दरशन करियो। सो तोकों मेरे

दरशन होइंगे। ता पाछें कहे, जो-तू जैसी मेरी सेवा करी याही रीति सों सदा तू इनकी सेवा कीजो। ऐसें शेठ बात कहि कै शिखाई कै ता पाछें आप विजय कियो। तब अजबकुंवरि बाई ने बोहोत भेंट करी। ता पाछें श्रीगुसांईजी गुजरात पधारे। ता पाछें अजबकुंवरि बाई पादुकाजी की सेवा करन लागी। सो प्रेम संयुक्त शेठ काज करे। सेवा भली भांति सों मार्ग की रीति सों करे। सो श्रीपादुकाजी शेठ सानुभावता जनावे, बातें करें। सो जब श्रीगुसांईजी कौ दरशन न होंई तब अजबकुंवरि बाई कों विरह-ताप होंई। तब श्रीपादुकाजी कौ टेरा खोलि कै देखे, तो श्रीगुसांईजी बैठे हैं। सो पोथी देखत हैं। सो श्रीगुसांईजी शेठ वार्ता करते। पाछें श्रीगुसांईजी की कृपा तें अजबकुंवरि बाई कों साक्षात् श्रीगोवर्द्धननाथजी हू दरशन देन लागे। सो श्रीगोवर्द्धननाथजी आप वासों बातें करें, चोपड़ खेलें। हास्यादिक करें। सो ऐसें नित्य दरशन देहि। जा दिन दरशन न होइ ता दिन जल-पान न करे, परि हरे। ता पाछें श्रीगोवर्द्धननाथीजी जब पांव धारे तब दरसन करे। ता पाछें जो-कछू नौतन नौतन सामग्री सिद्ध करि मैं राखती सो श्रीनाथजी कों भोग समर्पे।[18]

इस प्रकार वल्लभ सम्प्रदाय के वार्ता साहित्य में मीरां संबंधी जो उल्लेख मिलते हैं उनसे अनुमान लगाया जा सकता है कि वल्लभ संप्रदाय मीरां की लोकोन्मुखी भक्ति जिसमें शास्त्रीयता तथा रूखी दार्शनिकता का सर्वथा अभाव था पूर्णतयाः नापसंद करता था। वार्ता साहित्य में मीरां के चरित्र को इस रूप में उभारा गया है मानों वह कुटिल स्त्री थी जैसा कि 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' प्रसंग से स्पष्ट होता है। यहां यह भी ध्यान रखना चाहिए कि वल्लभ संप्रदाय वाले मेवाड़ की सत्ता से अधिक निकट संपर्क में थे अतः वहां की घरेलू राजनीति से भी परिचित थे। दुर्ग में मीरां के प्रतिरोध की भी उनको जानकारी थी अतः पूर्वाग्रहों के कारण उन्होंने मीरां को कभी भी भक्त स्वीकार नहीं किया वरन् उसे हमेशा चालाक व कुटिल स्त्री मानते रहे। वास्तविकता यह थी कि मीरां चालाक व कुटिल नहीं वरन् चतुर व कुशाग्र बुद्धि थी जो भक्ति को साधन के रूप में उपयोग करके अपने संघर्ष को परिणति तक पहुंचाना जानती थी और यही बात पुरुषों की वर्चस्वशीलता के विचार से ग्रसित वल्लभ संप्रदाय के कर्णधारों को पसंद न थी। भक्तमाल के रचनाकारों के साथ यह दिक्कत न थी भक्तमाल के रचनाकारों व टीकाकारों को न तो मेवाड़ के शासकों से किसी लाभ की ही आशा थी एवं न ही मेवाड़ के शासक उन्हें कोई

हानि ही पहुंचा सकते थे किन्तु उनके वर्णन में एक मात्र न्यूनता यही थी कि उनका वर्णन तटस्थ तथा निष्पक्ष होते हुए भी आधी-अधूरी जानकारी पर आधारित था। मेवाड़ की राजनीतिक तथा दुर्ग की विडम्बनापूर्ण स्थितियों से अनभिज्ञ होने के कारण वे मीरां के व्यक्तित्व को अपने वास्तविक रूप में प्रस्तुत नहीं कर सके। उन्होंने मीरां को उसी रूप में जाना पहचाना जिस रूप में मीरां को लोक में प्रसिद्धि प्राप्त थी।

वार्ताओं तथा भक्तमालों में मीरां संबंधी छुट-पुट टिप्पणियों के अलावा मीरां के संबंध में नागरीदास कृत 'सिंगार-सागर' के अंतर्गत पद प्रसंग माला में मीरां से संबंधित कुछ प्रसंग और तत्संबंधी पद हैं। पद प्रबोध माला के मंगलाचरण की स्तुति के पद में भी मीरां का उल्लेख है। डॉ. सी.एल. प्रभात ने अपने शोध-प्रबंध में इनको इस प्रकार प्रस्तुत किया है।

''नागरीदास की रचनाओं में मीरा संबंधी उल्लेख निम्नांकित हैं-

(क) पद-प्रबोधमाला का उल्लेख-

मेरे येई बेद व्यास।।

श्री हरिवंशरु व्यास गदाधार परमानन्द नन्ददास।।

x x x x x

तुलसीदास मीरां माधव अरु उभै नागरीदास।।

(ख) पद-प्रसंगमाला के उल्लेख-

(1) अथ अन्य पद-प्रसंग।। बचनिका।। मेड़तें मीरांबाई तिनकों राना के छोटे भाई सों ब्याही, यह प्रसिद्ध है ही। सो कितनेक दिन उपरान्त काहू समै राना के वा भाई को देहान्त भयो, अरु राना हुते सो मीरांबाई सों दुष पाय रहे ही हैं। ये वैष्णवनि को सतसंग करति। यातैं, वा समै राना ने कहाई, जो यह औसर है तुम भरता के संग सती होतु। तब मीरांबाई भगवत रंग आगै लहे हैं, त्योंही लगे रहे। या समै कछू षेद मानी नाही, अरु या बात के उत्तर कों एक विष्णुपद नयो बनाय राना कों लिषि पठयो। पद बहुत प्रसिद्ध भयो।। सो वह यह पद।।

मीरां के रंग लग्यो को और रंग सब अटक परी।।

गिरधर गास्यां सती न होस्यां मन मोह्यो धननामी।।

जेठ-बहू को नातो नहीं राणाजी म्हे सेवग थे स्वामी।।

चूड़ों देवड़ो तिलक जु माला सीलवर्त सिंगार।।
और सिंगार भावै नहिं राणाजी यों गुरु ग्यान हमार।।
कोई निंदा कोई बिंदों गुण गोविंद रा गास्यां।।
जिण मारण वै संत पहूंता तिण मारण म्हे जास्यां।।
चोरी करां न जीव संतांवां कांई करसी म्हांरो कोई।।
हसती चढ़ि गधै नहीं चढ़ां यातो बात न होई।।
राज करंता नरक पड़ेसी भोगीड़ा जम कै लीया।।
गिरधर धणी कडूंबो गिरधर मात पिता सुत भाई।।
थे थहारें म्हे ह्या हारें हो राणा जी यों कहै मीरांबाई।।

(2) पुनः अन्य पद-प्रसंग। मीरांबाई सों राना बहौत दुष पायै रहै। राना के घर की रीति तें इनके भिन्न रीत। यह भगवत संबंध सत्यसंग विशेष करै। देह संबंध को नातै व्यौहार कछु न मानैं, राना बहुत समुझाय रह्यो, निदान एक विष को प्यालो उनको पठयो, कह्यो चरनामृत को नाम लैके दीजियो, उनकै प्रण है चरणामृत के नाम तैं पी ही जायंगे, सो ऐसें ही भयो, जांनि बूझ, पीयो, राना तो इनके मरिबे की राह देखत रह्यो, अरु यह झांझ-मृदंग संग लैके परमरंग सो एक नयो पद बनाय ठाकुर आगे गावत भये, पद बहुत प्रसिद्ध भयो, सो वह यह पद -

रानैजू विष दीनो हम जानी।
जान बूझि चरनामृत सुनि पियो, नहिं बौरी भौरानी।।
कंचन कसत कसौटी जैसै तन रह्यौ बारह बानी।।
आपुन गिरधर न्याव कियो यह छांन्यौ दूधरु पानी।।
राना कोटिक बारौ जिहिं पर हौं तिंहि हाथ बिकानी।।
मीरां प्रभु गिरधर नागर कै चरन कमल लपटानी।।2।।

(3) पुनः अन्य पद-प्रसंग।। मीरांबाई की कई भांति की चरचा निंदकजन राना आगै बहुत करन लागे, तब एक समै राना नै अपने अंतःपुर की एक स्त्री कौं पठायो। कह्यौ कि आधी राति उपरान्त जहां वे होंय तहां चली जाइये, काहू की हटकी मत रहिये। सो बानैं ऐसैं ही कियो, मीरांबाई अटारी पर सोई सोई जगत ही सौंहैं, चन्द्रमा कौं देषि हरि प्रीतम के अंतराय

को बिरह सह सहत हीं उनकी भांवनां करि-करि परी उसास लेत ही, इतने हीं ये जाय ठाढी भई। ताकूं मीरांबाई कहयो, तनकेक बैठिकै हमारो दुष सुनौं या समैं हमकूं तुम बड़े श्रोता मिले, सो जद्यपि वह बिजाती ही, परन्तु ज्यों कोऊ अति अधीर अनुराकी होय, ताकूं बिजाती सजाती को ग्यान नांही रहै, वहि अपने चित मैं हैं सो कहें ही कहैं। यातैं वाके आगैं वही बेर एक पद बनाय बनाय कैं गांवन लगी, सो पद सुनि इनकी अरस्था देषि वह आई हुती सो परम अनुराग में मूरछित हो गई। इनकी ही निकटवर्ती परम वैष्णव भई। फिरि राना के अंत:पुर में न गई। फिरि राना और काहू स्त्रीनि कौं इनपै पठावैं सोई नट जाइ, अरु कहै उनपै ज्यो-ज्यो जाय हैं, सो बावरी है जात हैं। तातैं हम न जांहिनी। यह बात इनकैं बहुत प्रसिद्ध भई, सो पिछली रात के समैं जा पद के सुनै तैं राना की सहचरी की उनमत्त दसा होय गई सो वह यह पद -

सषी मेरी नींद नसांनी हो।
पिय को पंथ निहारतां सब रैंन बिहानी।।
सषीयनि मिलि सीष दई मन एक न मानी।।
बिन दैषैं कल ना परै जिय ऐसी ठानी।।
अंग छीन व्याकुल भई मुष पिय पिय बांनी।।
अंतर बेदन विरह की बहि पी न जानी।।
ज्यों चातक धन कौं रहै मछरी बिन पानी।।
मीरां व्याकुल बिरहिनी सुधि बुधि बिसरानी।।3।।

नागरीदास के उक्त उल्लेख तो महत्वपूर्ण हैं ही, पर उनके द्वारा उद्घृत पर एक प्रामाणिक हस्तलिखित प्रति-परंपरा के अंश भी हैं।

(4) पुन: अन्य पद-प्रसंग।। राना को छोटो भाई मीरां के देह संबंध को भर्ता हो, सो ताको परलोक भयो, ता पीछै मीरांबाई गंगादिक तीरथ करिकै अरु श्री वृन्दावन हू आये, तहां जीऊ गुसांईजी को प्रण स्त्री के न देषिबे को छुटाय सब सों गुरु गोविंदवत सनमान सत्यसंग करि द्वारिका को चले, ऊंहा बास करिबै कैं लियैं, तहीं एक मारग में एक नयो पद बनायो, बहुत प्रसिद्ध भयो, सो वह यह पद -

राय श्रीरनछोड़ दीज्यो द्वारिका को बास।।

संख चक्र गदा पद्य दरसें मिटै जम की त्रास।
सकल तीरथ गोमती के रहत नित निवास।।
संष झालर झांझ बाजै सदा सुष की रास।।
तज्यो देसरु बेसहू तजि तज्यो राना राज।।
दास मीरा सरन आवत तुम्हैं अब सब लाज।।4।।

(5) पुनः-प्रसंग।। सो या भांति मनोरथ करत यह पद गावत द्वारिका पहुंचे, तहां कोई दिन रहे। ता पीछै मीरांबाई के संग प्रौहितादिक जे राना के लोक है, तिन कह्यो अब बहुत दिन भये है, अब देश कौं चलो, राना की आग्या है, ऐसै द्वै तीन दिन तो कह्यो, फिरि मीरांबाई परि धरना कियो, तब मीरांबाई ठाकुर रनछोड़जू सौं बिदा ह्वैबे को नांव लै मंदिर में अकेले ही जाय महाआरति सहित एक नयो पर बनाय गायो, सो वह यह पद -

हरि हरितो जनकी भीर।
द्रोपती की लाज राषी तुम बढ़ायो चीर।।
भक्ति कारन रूप नरसिंघ धरयो आप सरीर।।
हरिकस्यप मारि लीनौं धर्‌यो नांहिन धीर।।
बूड़तैं गज ग्राह तायों कियो बाहिर नीर।
दास मीरा लाल गिरधर दुष जहां तहां पीर।।5।।

सो यह पद गाये हूं उततें न टरे, तब महाआरति प्रेमावेस सहित एक और पर बनाय गायो, तबही ठाकुर आप में उनकौं यानी शरीर तैं लीन करि लीने। देह हू न रही, सो जा पद के गायें लीन भये, सो वह यह पद -

सजन सुधि ज्यों जानैं त्यों लीजै।
तुम बिन मेरैं और न कोई कृपा रावरी कीजै।
द्यौस न भूष रैन नहिं निद्रा यह तन पल-पल छीजै।।
मीरा प्रभु गिरधर नागर अब मिलि बिछुरनि नहिं कीजै।।6।।

सो ये दोऊ पद निकट द्वार कै इनकी परम चतुर वैष्णव सषी ने कंठ करि लीनै तथा लिषि लीने ते प्रसिद्ध भये।।5।।[19]''

नागरीदास स्वयं मीरां के पितृकुल अर्थात् राठौड़ वंश से संबंधित थे किन्तु वे वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित थे फिर भी नागरीदास के मीरां संबंधी उल्लेख स्वतंत्र दृष्टिकोण से अनुप्राणित हैं। मीरां संबधी ये उल्लेख मीरां से सैकड़ों वर्ष पश्चात् के हैं।

कहा जाता है कि 'मीरांबाई की ख्यात' नाम से कोई मीरां की ख्यात भी उपलबध है किन्तु तमाम प्रयासों को बावजूद इस प्रकार की किसी ख्यात की जानकारी नहीं हो सकी। यदि ऐसा सत्य है तब किसी स्त्री पर लिखी गई यह एक दुलभ ख्यात होगी जो नि:संदेह परम्परा का अतिक्रमण है। आमतौर पर ख्यातें राजपुरुषों की वीरता व प्रसिद्धि को केन्द्र में रखकर लिखी जाती थी। इसी प्रकार गुजराती, मराठी एवं राजपूताने की बोलियों में मीरां से संबंधित चरित्र तथा परिचय (परचई) ग्रंथ भी उपलब्ध होते हैं जिनकी उपलब्धता के बावजूद समय के अभाव में प्रस्तुत शोध प्रबंध में उपयोग न हो सका। इस प्रकार के ग्रंथों में मराठी में सीपीनामाकृत चरित्र मीरांबाई, गुजराती में दयाराम कृत मीरां चरित्र तथा राजस्थानी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित रामसनेही साधु सुखसारण द्वारा लिखित 'मीरांबाई की परचई' का उल्लेख किया जा सकता है। इनका परिचय डॉ. सी.एल. प्रभात ने अपने शोध प्रबंध में दिया है।

विभिन्न भक्तमालों में मीरां के उल्लेख का पूर्व में वर्णन किया जा चुका है। अंतत: भक्तमालों की ही परम्परा में चारण ब्रह्मदास जी कृत भगतमाल का उल्लेख करना भी प्रासंगिक होगा जिसमें मीरां संबंधी निम्न पद मिलता है-

मेड़त्यां कुल मुरधरा मझ,
अधपत्यां आधार।
मगन मूरत मांहि निरतन,
लई मीरां लार।
तौ रिझवार जी रिझवार,
भगवत गावतां रिझवार।[20]

इस पद की विशिष्टता यह है कि इसमें मीरां को क्षत्रीय राजाओं का आधार रूप कहा है। पद में मीरां का उल्लेख समर्पित भक्त के रूप में हुआ है। चारण ब्रह्मदास जी दादूपंथी थे किन्तु उन्होंने सगुणा मीरां पर प्रशंसात्मक लेखनी चलाई। नि:संदेह

हस्तलिखित पाण्डुलिपियों, वार्ता साहित्य तथा भक्तमालों के अध्ययन से यह साबित हो जाता है कि मध्यकाल में मीरां का व्यक्तित्व लोक से लेकर सत्ता प्रतिष्ठान एवं भक्त समुदाय के मध्य आकर्षण का केन्द्र बन चुका था।

संदर्भः

1. विक्टोरिया हॉल, गुलाब बाग, उदयपुर, चित्र-74
2. हरजस, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर, पत्र सं.-92
3. हरजस, राजस्थानी पांडुलिपियां, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर।
4. राजस्थान में ग्रंथों की खोज, निदेशक राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी, पृ.-07, 14, 28, 40, 115 एवं 187
5. 'मीरां जी री लीला', पोथीखाना, जयपुर, क्रमांक-1570,
6. 'मीरां महोत्सव-96', मीरां स्मृति संस्थान, चित्तौड़, पृ.-26
7. ललिता प्रसाद सुकुल (सं.) मीरांबाई का जीवन चरित्रः मुंशी देवी प्रसाद, पृ.-35
8. नामादास, श्रीभक्तमाल, पृ.-712
9. प्रो. मैनेजर पाण्डेय सर, जे.एन.यू.
10. मीरांदासी सम्प्रदाय का साक्ष्य।
11. प्रियादास, श्रीभक्तमाल (रूपकला), पृ.-714
12. उद्घृत, मीराः जीवन और काव्य, डॉ. सी.एल. प्रभावत, पृ.-41
13. राघवदास, भक्तमाल (अगरचंद नाहटा), ग्रंथांक-78, प्रा.वि.प्र., जोधपुर, पृ.-99
14. उद्घृत, मीरांः जीवन और काव्य, डॉ. सी.एल. प्रभात, पृ.-48
15. चौरासी वैष्णवन की वार्ता, वेंकटेश्वर प्रेस, पृ.-163
16. वही, पृ.-207
17. वही, पृ.-342
18. दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, पूजा प्रकाशन, पृ.-61
19. उद्घृत, मीराः जीवन और काव्य, डॉ. सी.एल. प्रभात, पृ.-52
20. चारण ब्रह्मदास, भगतमाल, प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, पृ.-45

अध्याय चार

किवदंतियाँ, परम्पराएँ एवं रीति-रिवाज

अध्याय चार

किवदंतियाँ, परम्पराएँ एवं रीति-रिवाज

पुरातात्त्विक स्त्रोत सामग्री के विपरीत किवदंतियों, परम्पराओं एवं रीति रिवाजों के आधार पर इतिहास अथवा ऐतिहासिक व्यक्तित्व के सन्दर्भ में निश्चित प्रामाणिक सत्य का उद्‌घाटन करना अपेक्षाकृत कठिन कार्य है तथापि इतिहासकारों ने इतिहास निर्माण में इनका बेहतर उपयोग किया है। जरूरत केवल किवदंतियों के विश्लेषण में वैज्ञानिक सोच की है। मीरां के जीवन से संबंधित प्रचलित किवदंतियाँ भी मीरां के सन्दर्भ में महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ उपलब्ध कराती हैं।

मीरां के सन्दर्भ में एक किवदंती प्रचलित है कि मीरां को मारने के लिए उनके देवर महाराणा विक्रमादित्य ने विष का प्याला भेजा था। इस संबंध में एक पद प्रचलित है-

पग घुंघरू बांध मीरां नाची रे!
म्हें तो मेरे सांवरिया की आप ही हो गई दासी रे।
लोग कहें मीरां भई बावरी न्यात कहें कुलनासी रे।।
बिस का प्याला राणाजी भेज्या पीवत मीरां हांसी रे।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर सहज मिलें अविनासी रे।[1]

कहा जाता है कि जिस ब्राह्मण के हाथों मीरां के लिए विष का प्याला भेजा गया था, वह ब्राह्मण विजयवर्गीय ब्राह्मण था। एक मान्यता के अनुसार मीरां ने उस विजयवर्गीय ब्राह्मण को श्राप दिया था कि उसकी कभी वंशवृद्धि नहीं होगी। आज भी विजयवर्गीय ब्राह्मणों में ऐसी मान्यता है कि मीरां के मंदिर निर्माण अथवा आराधना से वे श्रापमुक्त हो सकते हैं।[2] अजमेर के निकट पुष्कर में तथा जयपुर में गलता के निकट मीरां के छोटे-छोटे मंदिर मिले हैं एवं उन दोनों ही मंदिरों का संबंध विजयवर्गीय ब्राह्मणों से हैं। उस क्षेत्र में और भी ऐसे मीरां मंदिर मिल जाएंगे। यदि मीरां को किसी प्रकार का विष नहीं दिया गया होता तो सैकड़ों वर्षों से विजयवर्गीय ब्राह्मणों में मीरां मंदिर के निर्माण की परम्परा नहीं चल रही होती। मीरां को विष तो दिया गया होगा परंतु वह विषमुक्त कैसे हुई यह विवाद का विषय हो सकता है। संभव है विष कम असरदार रहा हो अथवा मीरां के

शरीर की प्रतिरोधी क्षमता अधिक सशक्त हो। संभव है मीरां ने विष ग्रहण ही न किया हो। कारण चाहे जो रहे हो पर इस तरह की कोई घटना हुई थी, यह मानने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए। यदि इस घटना पर विद्वानों द्वारा संदेह किया जाता है तब विद्वानों को उस परम्परा की भी विस्तृत व्याख्या करनी होगी जो सैकड़ों वर्षों से विजयवर्गीय ब्राह्मणों में चली आ रही है।

ऐतिहासिक तथ्य बताते हैं कि राजपूत स्त्रियाँ अफीम का सेवन करती थी। जौहर अथवा सती होने से पूर्व भी राजपूत स्त्रियाँ अफीम का नशा करती थी। ताकि जलते समय दर्द का अहसास कम से कम हो।[3] संभव है मीरां भी ऐसा करती रही हो। आज लगभग 500 वर्ष पश्चात् हमारे पास ऐसे कोई पुष्ट प्रमाण नहीं हैं कि मीरां ऐसा करती ही रही हो तथापि राजपूत स्त्रियों के संदर्भ में यह ऐतिहासिक सत्य है। उल्लेखनीय है कि चित्तौड़ एवं आसपास का प्रदेश अफीम उत्पादन के लिए न केवल उस समय प्रसिद्ध था वरन् वहाँ आज भी सरकारी नियंत्रण में अफीम की खेती होती है। अफीम लेने वाले जो कि इसका नियमित रूप से सेवन करते हैं, कहा जाता है कि काले नाग (कोबरा) के जहर का भी उन पर असर नहीं होता। अधिक संभावना यही है कि मीरां को दिया जाने वाला जहर काले नाग का हो जहर रहा होगा। उस काल में इससे अधिक तीव्र जहर का उल्लेख नहीं मिलता है। परंतु आस्था का तकाजा यही है कि मीरां के विषपान की घटना को सत्य मानते हुए उस विष से विषमुक्ति को प्रभु कृपा मान लिया जाए। मीरां ही नहीं बाबर ने भी विषपान कर लिया था एवं बाद में जिंदा बचा रहा।

मीरां रैदास की शिष्या थी - कहना जरा कठिन है। प्रथम तो मीरां ने न तो रैदास द्वारा गृहीत भक्ति को अपनाया था एवं न ही दोनों भक्त कवियों के काल में कोई निश्चित साम्य स्थापित किया जा सकता है। इस भ्रम का कारण वस्तुतः मीरां मंदिर के ठीक सामने किसी निर्गुण पंथी संत की छतरी का होना है जिसके बारे में कहा जाता है कि वह रैदास की छतरी है। मीरां की कोई काकिया सास जो कि झाला सामंत की बेटी थी किसी निर्गुणपंथी संत की भक्त थी। बहुत कुछ संभव है कि इसका निर्माण उसी महारानी ने करवाया होगा न कि मीरां ने जो कि रैदास (रविदास) की शिष्या न रही थी।[4] जहाँ तक मीरां का किसी संत के शिष्यत्व का प्रश्न है, प्रत्येक सम्प्रदाय मीरां से अपना

संबंध जोड़ना चाहता रहा है। निम्बार्क से लेकर वल्लभ सम्प्रदाय तक मीरां की परवर्ती लोकप्रियता को देखते हुए मीरां से उनके सम्पर्क को लोकप्रसिद्ध करना चाहते हैं। उदयपुर के निम्बार्क सम्प्रदाय के महंत का कहना है कि निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्य स्वामी परशुराम देवाचार्य मीरां के कुलगुरु थे। ठीक इसी प्रकार उदयपुर के निकट नाथद्वारा मंदिर में जिसका संबंध वल्लभ सम्प्रदाय से है, में मीरां से संबंधित अनेक कहानियां मिल जाएगी जिसमें प्रत्येक कहानी का निहितार्थ एक ही है कि उनके सम्प्रदाय का कोई आचार्य मीरां का कुलगुरु अथवा दीक्षागुरु था। इन सब किस्से कहानियों में मजेदार बात यह है कि सभी सम्प्रदाय अपने-अपने आचार्यों को मीरां का गुरु ही बताते हैं। कोई भी सम्प्रदाय यह दावा नहीं करता कि कबीर आदि संतों की तरह मीरां के कोई शिष्य भी थे एवं न ही कोई सम्प्रदाय अपने किसी भक्त का मीरां का शिष्य होने का दावा करता है। इसका कारण साफ है, अन्य भक्त कवियों की तरह मीरां का उद्देश्य दार्शनिक विवेचना न होकर शुद्ध रूप से राजनीतिक था। यदि मीरां का उद्देश्य बतौर भक्त के रूप में विशुद्ध रूप से भक्ति होती तो निश्चित रूप से मीरां चाहती तो अपने शिष्यों की एक लम्बी परम्परा आरंभ कर सकती थी। किंतु उसने ऐसा नहीं किया न ही किसी दर्शन, भक्ति आदि झमेलों में पड़ी। मीरां को कृष्ण भक्ति की जरूरत थी, इसलिए नहीं कि कृष्ण के माध्यम से वह वैकुण्ठवास चाहती थी वरन् इसलिए कि तत्कालीन समाज जो मीरां को सती करके मोक्ष दिलाने पर उतारू था, उन धर्म के ठेकेदारों से न केवल स्वयं वरन् समस्त स्त्री जाति की रक्षा चाहती थी। अतः मीरां ने भक्ति को वहीं तक प्रश्रय दिया जहां तक उसे उसकी जरूरत थी। यही कारण है कि युवरानी मीरां ने न तो किसी का शिष्यत्व ग्रहण किया एवं न ही कोई शिष्य बनाया। शिष्य या सहेलियाँ केवल वे दासियाँ (डावडियाँ) ही थी जो मेड़ता से उसके साथ आई थी। एवं जिनके मध्य वह स्वयं को सुरक्षित महसूस करती थी।

हाड़ा सामंतों का भांजा महाराणा विक्रमादित्य न केवल मेड़तिया राठौड़ों को नापसंद था वरन् मेवाड़ के अन्य शक्तिशाली सामंत भी उससे नाखुश थे। उनमें से कुछ सामंत मेवाड़ में मेड़तिया राठौड़ों की महत्त्वपूर्ण उपस्थिति एवं राजमहल में मीरां की महत्तता को भी स्वीकार करते थे। राजनीतिक वैमनस्य के कारण मीरां की प्रताड़ना से मेड़तिया पहले से ही अप्रसन्न थे, इधर महाराणा की तुनक मिजाजी एवं कम उम्र ने मेवाड़ी सामंत

की एकता को छिन्न-भिन्न कर दिया था। कुछ सामंत परिवार मीरां के रिश्तेदार भी थे जैसे कि मीरां की माँ झाला सामंतों की बेटी थी। अतः झाला मीरां के ननिहाल पक्ष से थे।[5] अतः मीरां का प्रश्न एवं राजमहल में उसकी उपस्थिति राजनीतिक संघर्ष का कारण हो गया था। सामंतों में भी परस्पर दो वर्ग हो गए थे। एक वे सामंत थे जो मीरां की भक्ति एवं राजमहल में उसकी उपस्थिति को उचित मानते थे। उनमें अधिकांशतः वे सामंत थे जो या तो मीरां के रिश्तेदार थे अथवा वे सामंत जो मेड़तियों की निष्ठा मेवाड़ हेतु प्राप्त करने के इच्छुक थे। दूसरे वे सामंत थे जो अभी इंतजार करना चाहते थे एवं उस पाले में रहना चाहते थे जो अधिक शक्तिशाली हो। यही कारण था कि मीरां को महाराणा द्वारा प्रताड़ित किए जाने का वहाँ के कुछ सामंतों ने भी विरोध किया था। मेड़तियों की मेवाड़ को हृदय से तभी सैनिक मदद मिलती है जब नया महाराणा उदयसिंह मीरां को मनाने के लिए मेवाड़ से द्वारिका के लिए कुछ सामंत एवं कुछ पुरोहित भेजता है। यदि मीरां इस राजनीतिक रस्साकशी की केन्द्रबिन्दु न होती तो न तो मेवाड़ के सामंतों में मीरां के प्रश्न को लेकर किसी प्रकार का विभाजन ही देखने को मिलता एवं न ही मीरां के मेवाड़ त्याग के बाद मेड़तियों व मेवाड़ में दूरियाँ बढ़ती।

मेवाड़ में एक परम्परा यह भी रही है कि राजनीतिक जरूरतों के चलते महाराणा कई-कई राजकुमारियों से विवाह तो कर लेते थे परंतु महाराणा व महारानी के मध्य मेल न होने पर महारानियाँ राजमहल छोड़कर अन्य किलों में जा बसती थी। महाराणा प्रताप की माँ एवं पिता उदयसिंह के मध्य संबंध मधुर न होने के कारण प्रताप की माँ कुंभलगढ़ दुर्ग में बस गई थी। इसी प्रकार कुछ महारानियाँ रणथंभौर दुर्ग भी जा बसी थी। परंतु इस प्रकार का निष्कासन उन्हें राजनीतिक गतिविधियों एवं दांवपेंचों से भी दूर कर देता था। यदि मीरां चाहती तो चित्तौड़ छोड़कर अथवा ऐसे ही किसी दुर्ग में जाकर चित्तौड़ की राजनीति से स्वयं को दूर करके महाराणा से होने वाले मनमुटाव से बच सकती थी परंतु मीरां ने ऐसा न करके चित्तौड़ में ही रहना उचित समझा। इसका कारण था कि मीरां एकांतवासी भक्तिनी न थी। मीरां का उद्देश्य यदि केवल कृष्णोपासना होता तो भक्ति चित्तौड़ से दूर रहकर भी कर सकती थी परंतु मीरां ने ऐसा नहीं किया। मीरां चाहती थी कि कृष्णभक्ति के द्वारा वह न केवल सामाजिक परिवर्तन का बिगुल बजाए वरन् वह यह

पाण्डुलिपि (क्रमांक 01)

मीरां के नाम पर प्रचलित पद

पाण्डुलिपि (क्रमांक 02)

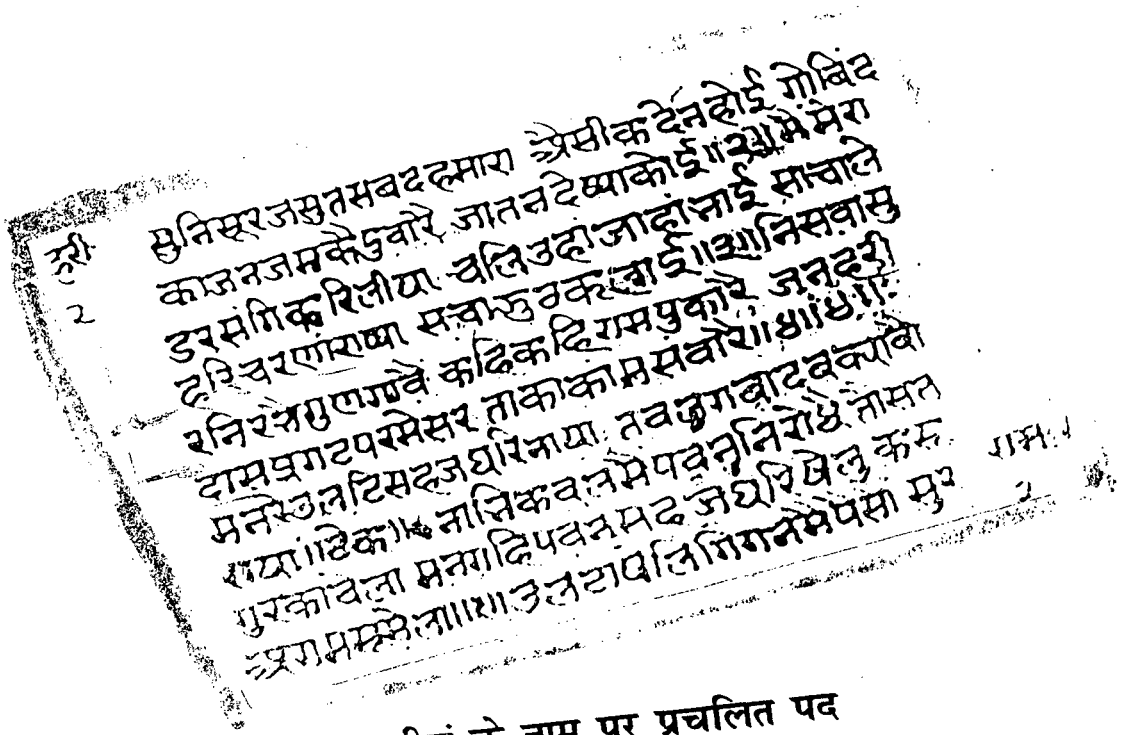

मीरां के नाम पर प्रचलित पद

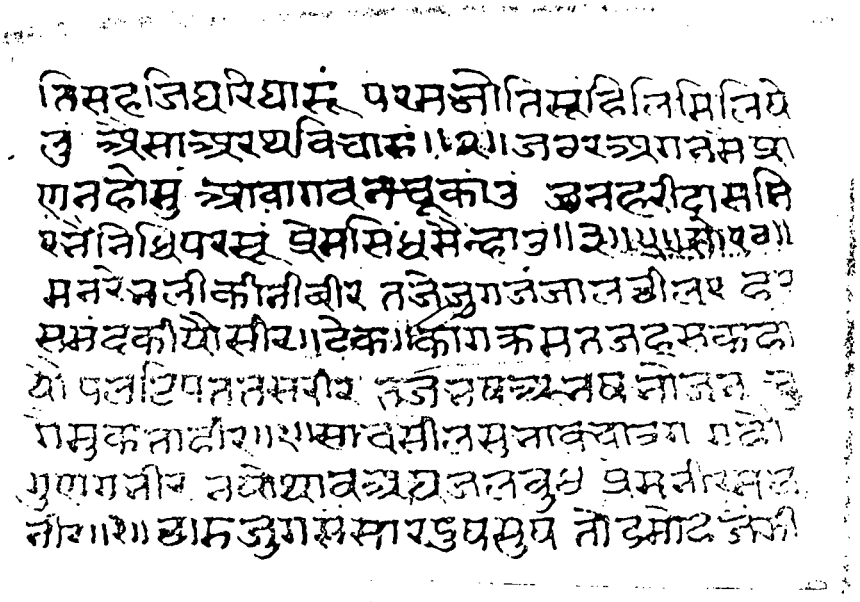

पाण्डुलिपि (क्रमांक 03)

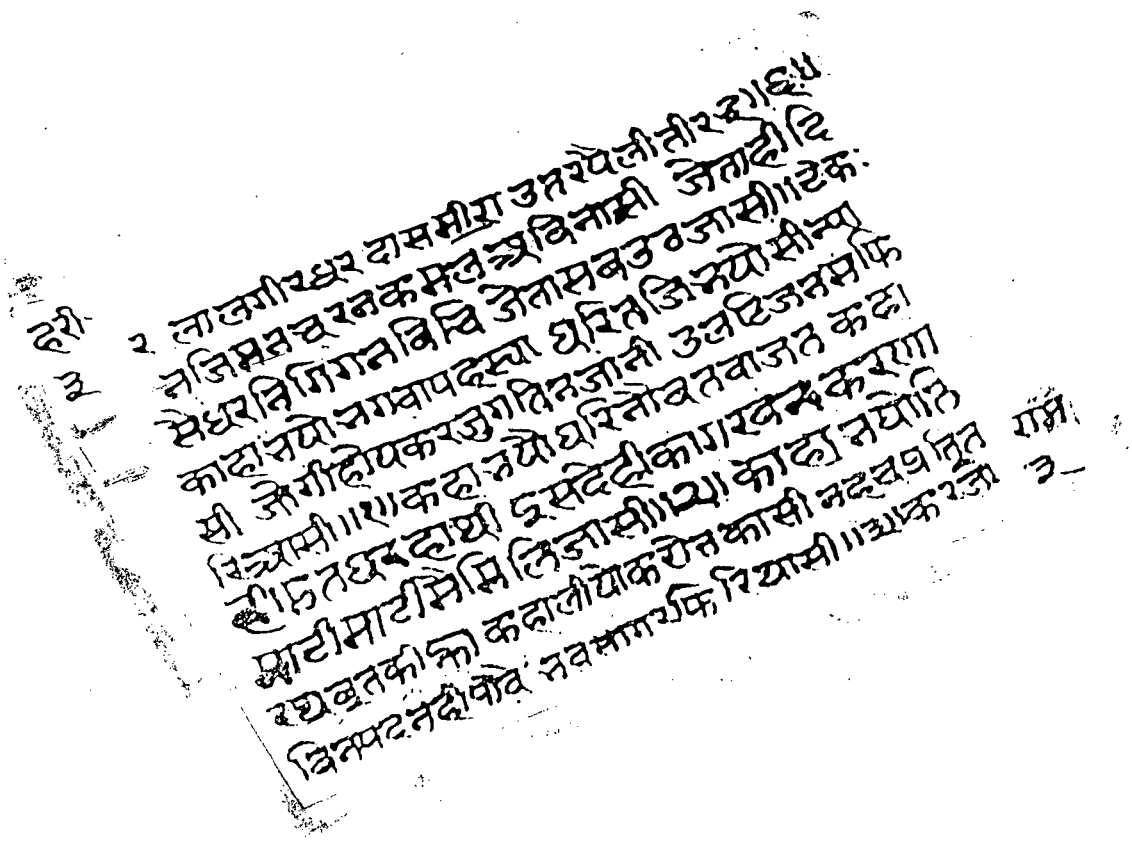

मीरां के नाम पर प्रचलित पद

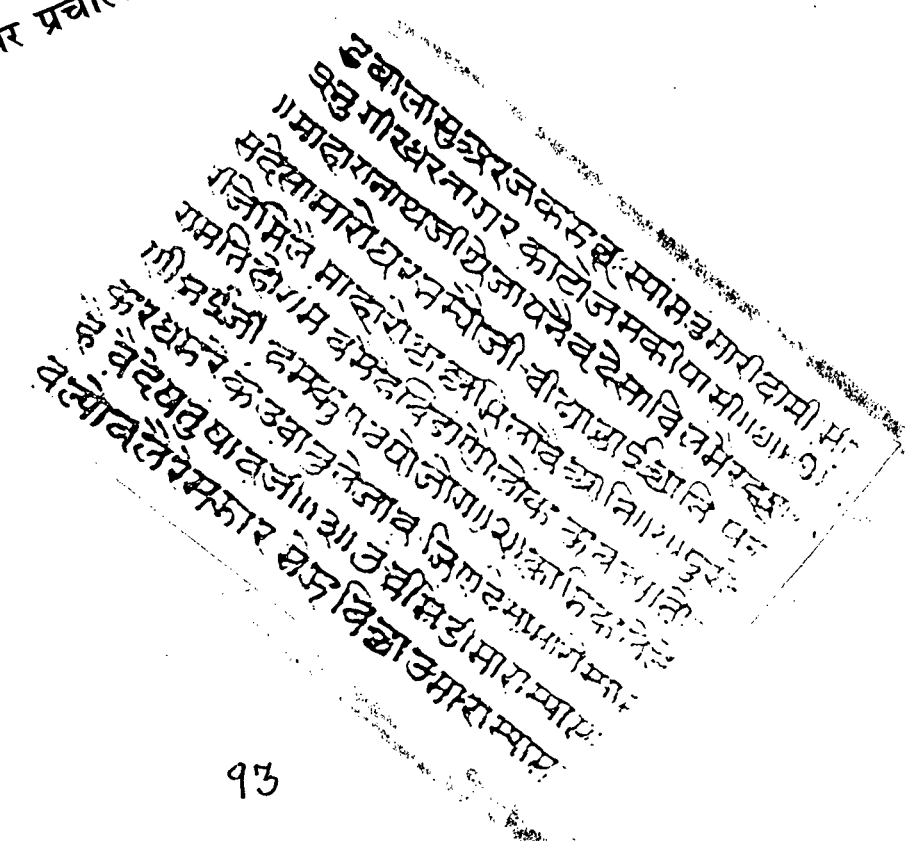

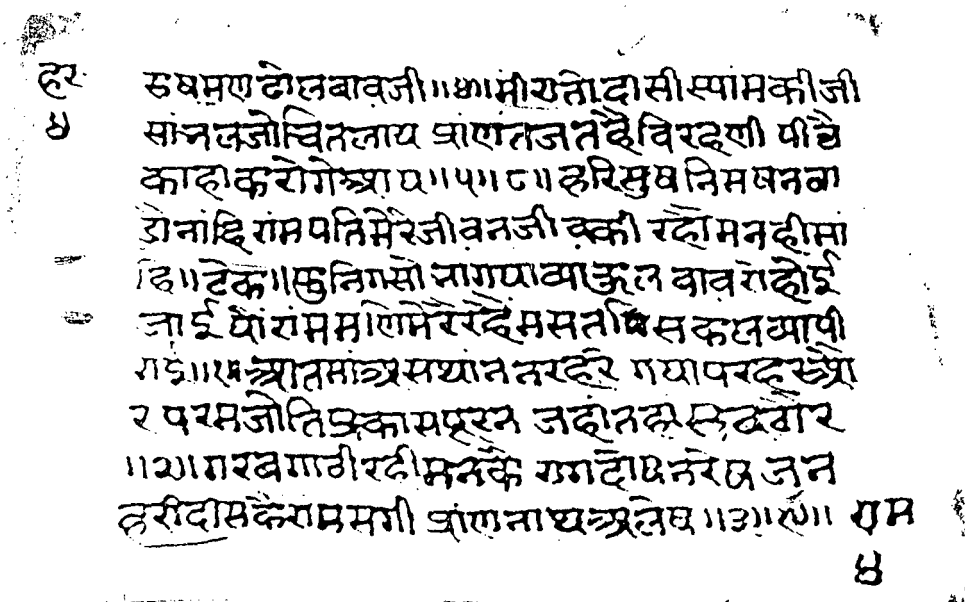

मीरां के नाम पर प्रचलित पद

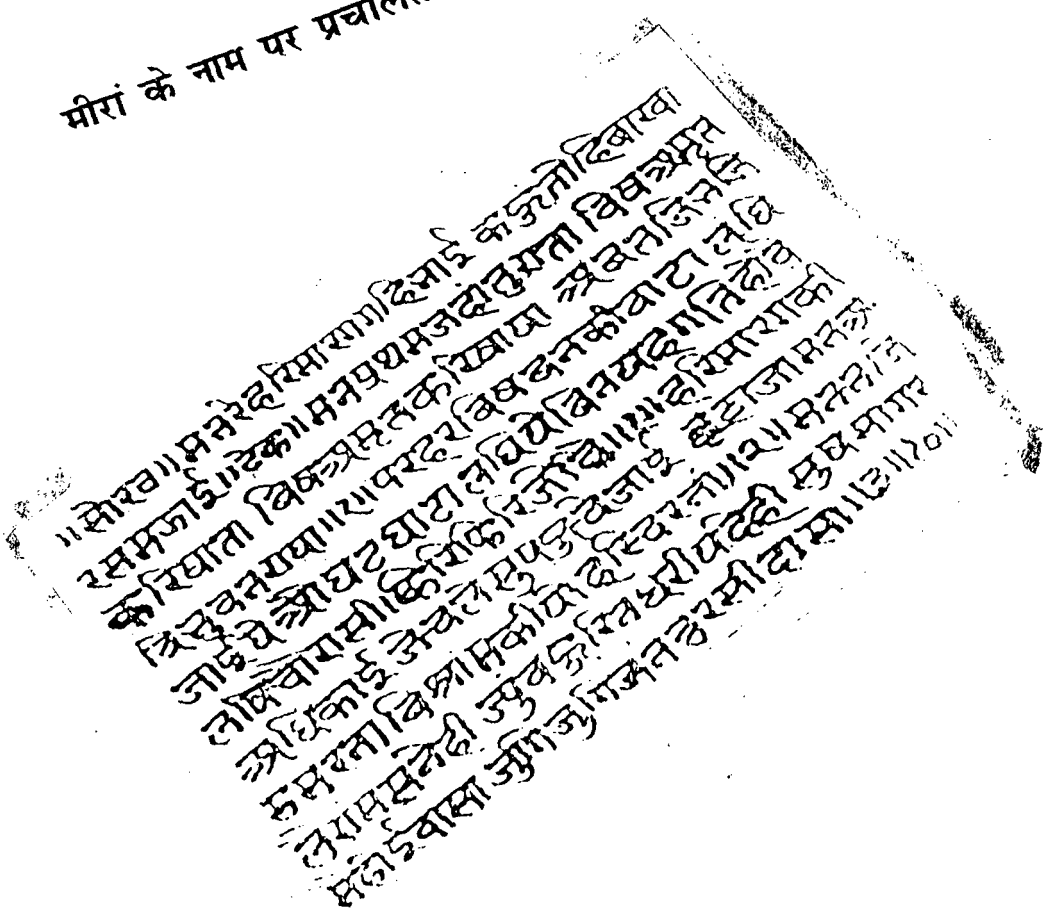

पाण्डुलिपि (क्रमांक 05)

मीरां के नाम पर प्रचलित पद

षटका॥ ३॥ पद॥ ११॥ सतगुर मेहर करी जोजी रिण दिवस मोलि
रांमरटा जो ओदी जो वीसरांम॥ टेर॥ मेर करी हे सतगुर मुज
पर। मोरो मन हरांम पुन केर काया मे षुनी॥ केइ विगाडे काम
॥१॥ जद्वे सत्तकुर समता सुमरण॥ सतगुर कुर विसराम॥ काम
क्रोध उरलोभ मोमहारी जे जमराण॥२॥ दोऊ कर जोड करू
वीणती॥ वारवार प्रणाम जनम जनम मोहो॥ सरणे राषो स
नाथे सुषरांम॥३॥ पद॥१२॥ मांनै इ मृतपा जोजी॥ टलतीर
सुमरण मे सतगुर आंण जगाइ जोजी॥ टेर॥ सतगुर मेरा
पर उपगारी पुन परखलै पाया॥ कोटक विगान पलक मे पे
ल्यास्ता जीव जगाया॥१॥ अरधरात ठलती के पीछे॥ जे कोइ
हरी गुण गावे॥ ठलती का सुमरण की मे मा मोहो मुष केही नज
वे॥२॥ वेगा दरसण द्यो मेरा साइयां॥ मे दरसण की प्यासी॥ मीरां

पाण्डुलिपि (क्रमांक 06)

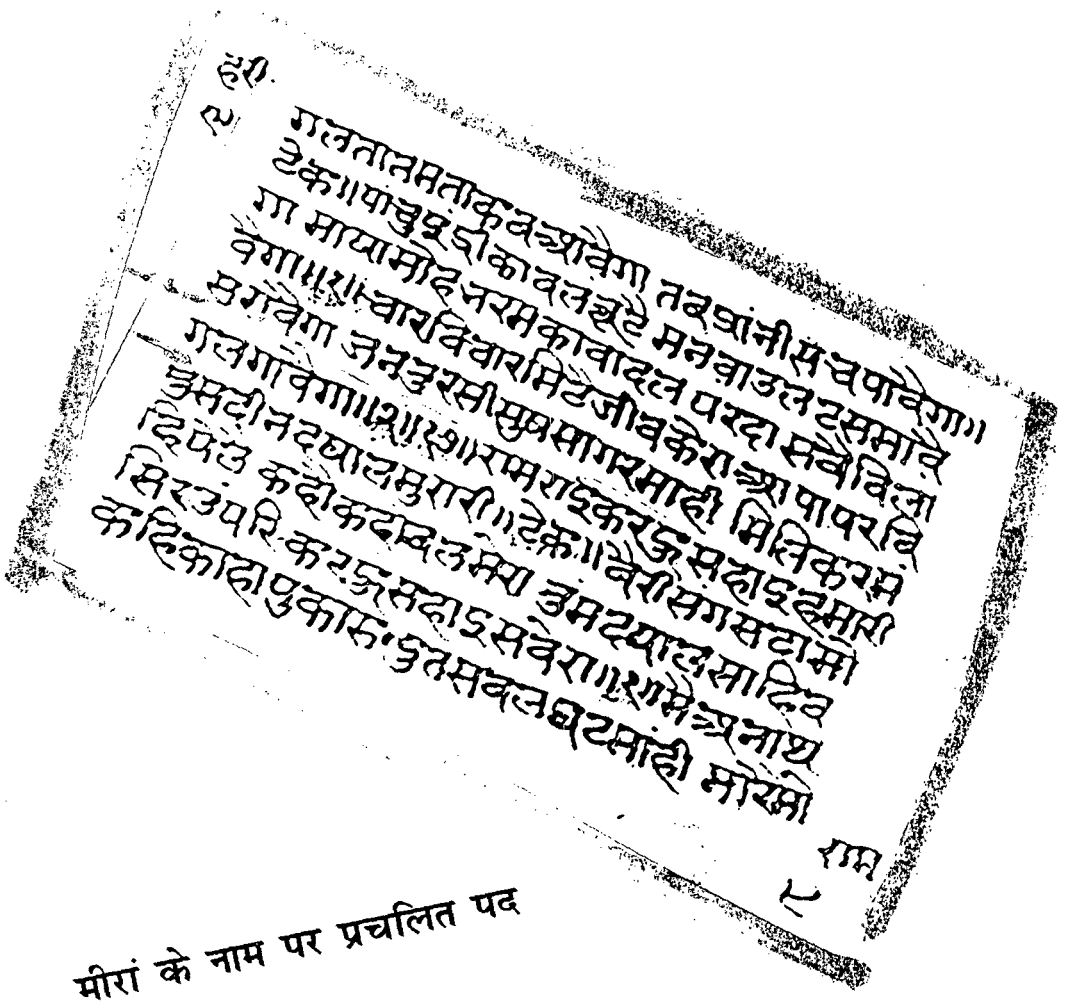

मीरां के नाम पर प्रचलित पद

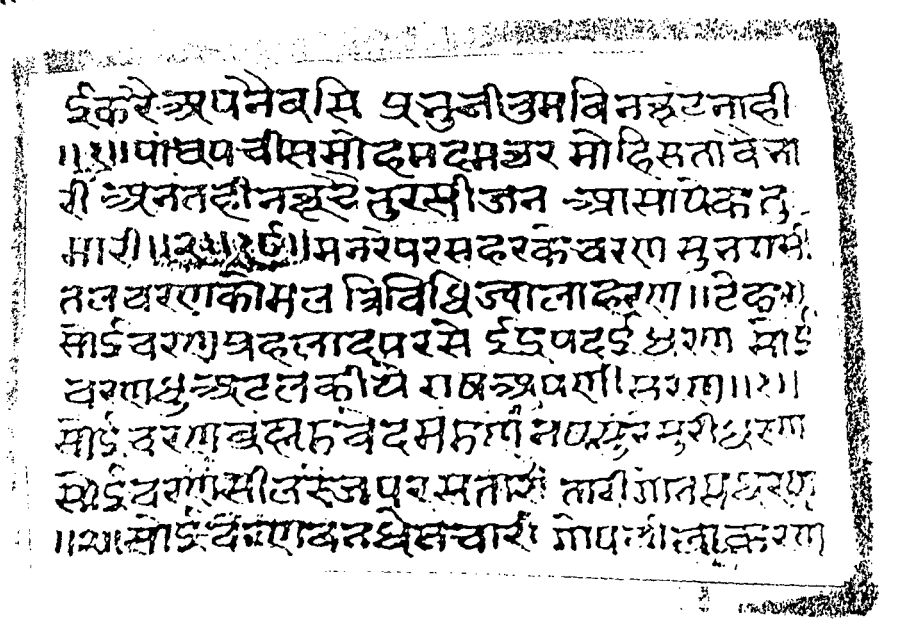

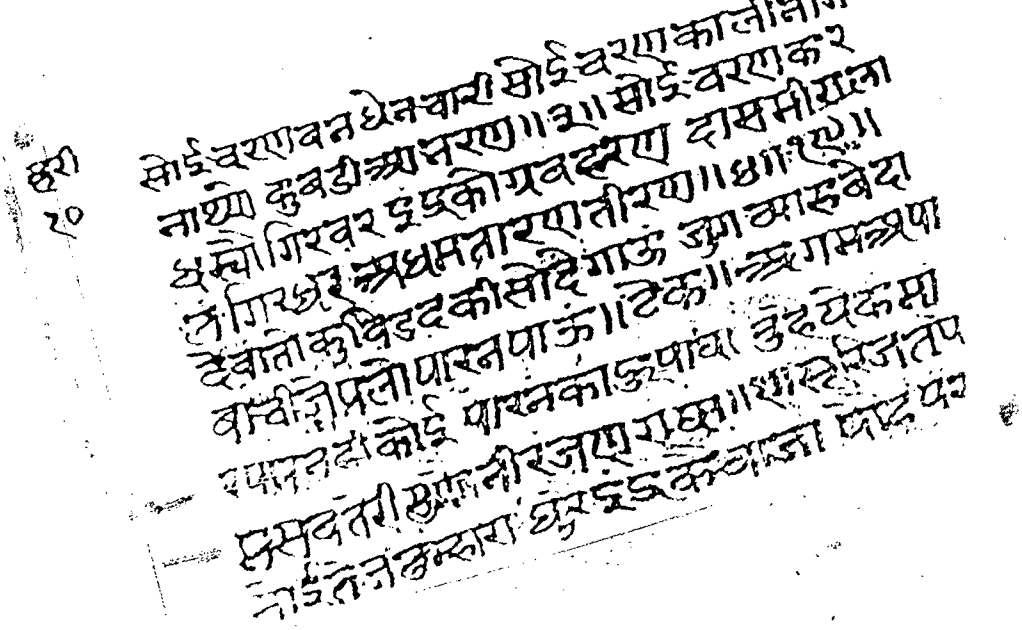

मीरां के नाम पर प्रचलित पद

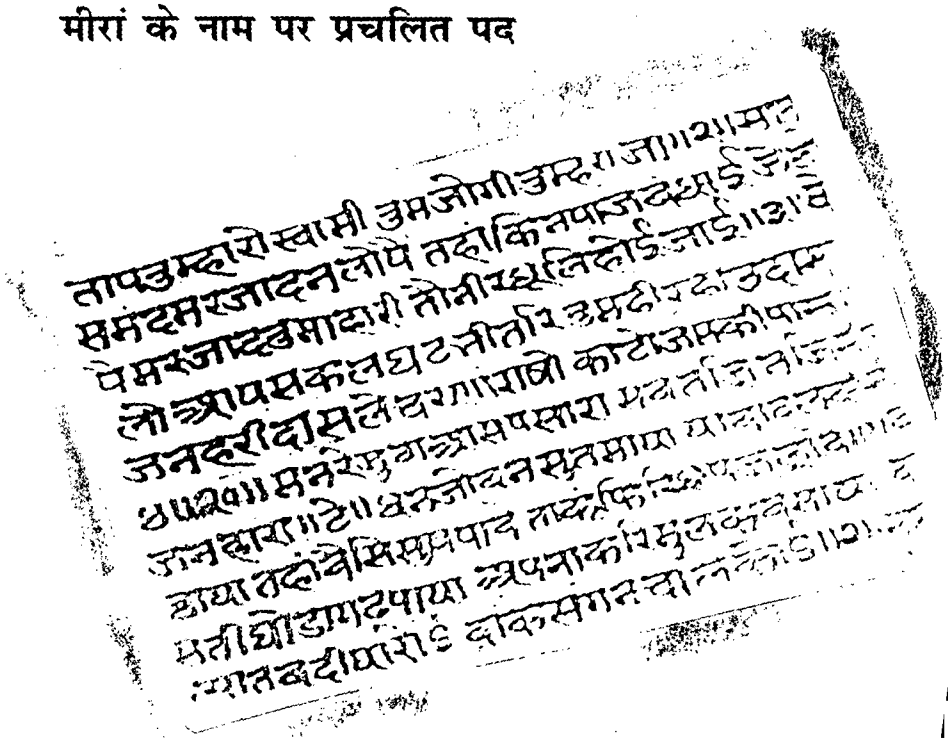

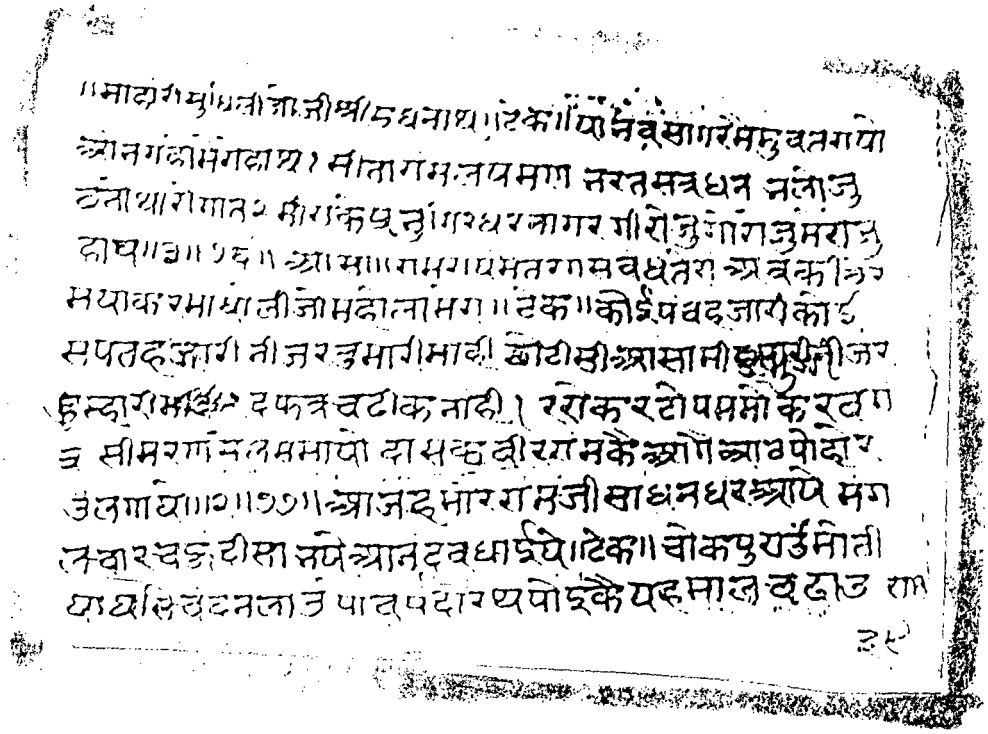

मीरां के नाम पर प्रचलित पद

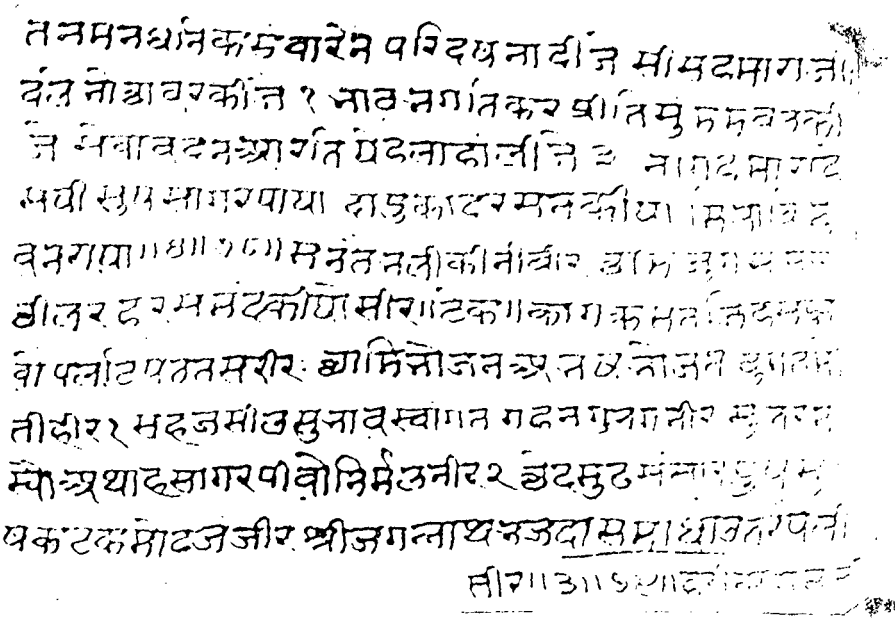

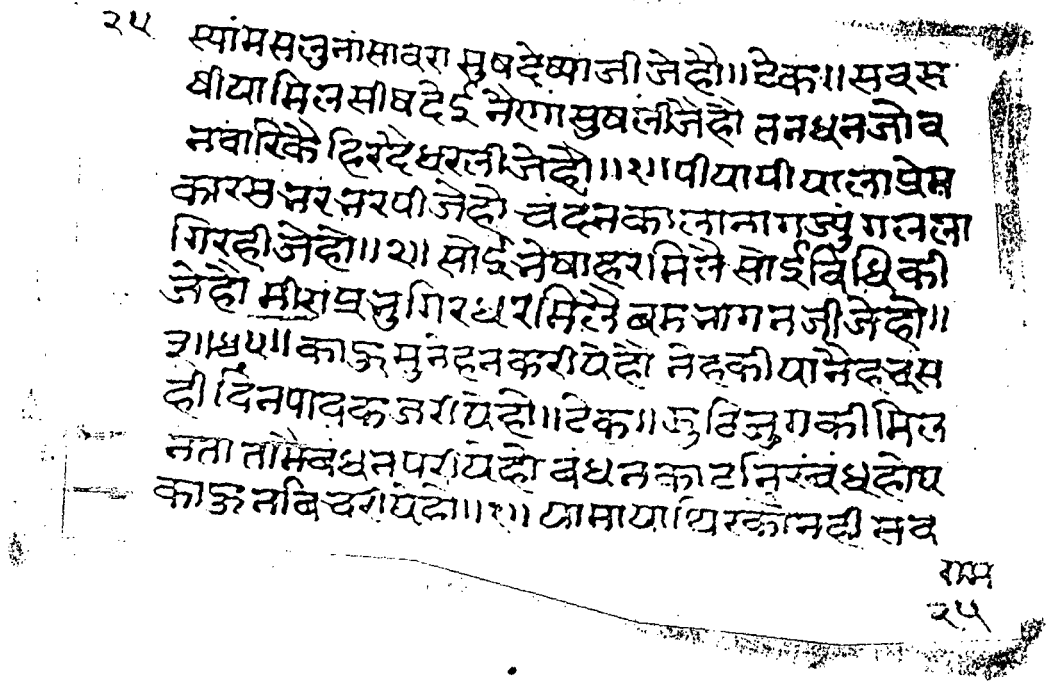

पाण्डुलिपि (क्रमांक 09)

२५ स्यांमसजुनांसावरा मुषदेष्याजी जेहो ॥टेक॥ सवस्
षीयां मिलसीष देई नेणां सुषलीजेहो तनधनजोव
नवारिके हिरदेधरली जेहो ॥२॥ पीयापीयालाप्रेम
कारस भरभरपी जेहो चंदनका तानागंजु गलला
गिरहीजेहो ॥३॥ सोई नेबाहुरा मिले सोई विधि की
जेहो मीरांप्रभु गिरधर मिले बफ भागन जी जेहो ॥
३॥४५॥ काऊमुनंदन करायेहो नेदकी पानेदवस
दी दिनपादक जरायेहो ॥टेक॥ ऊ ठिजुगकी मिल
नता तामेंबंधन परायेहो बंधनकाट निरबंधहोय
काऊ नविचरायेहो ॥१॥ मामायां थिरकोनदी सव
रास
२५

मीरां के नाम पर प्रचलित पद

[पाण्डुलिपियां क्रमांक-01 से 09 तक श्री के.एस. शेखावत के सैजन्य से]

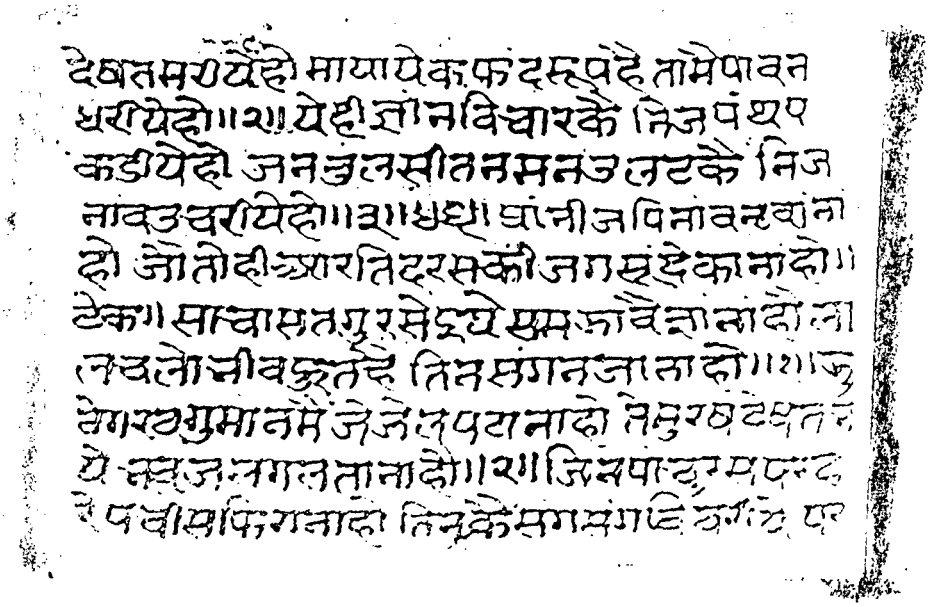

देषतमरायेहो मायायेक फंदरूपेहे तामेंपावन
धरायेहो ॥२॥ येही ज्ञान विचारके निजपंथप
कडायेहो जनतुलसीतनमनउलटके निज
नावउचरायेहो ॥३॥४४॥ थांनीजपिनावनवांना
हो जोतोदीआरति दरसकी जग सूंदेका नाहो ॥
टेक॥ साचासतगुरसेंहूये प्रेम जावैज्ञानांनाहो ला
लचलोभीवकूतहे तिनसंगनजानाहो ॥१॥ ऊ
त्रेमारठगुमानमें जेजे लपटानाहो तेनुरठदेषतन
ये जजनगलतानाहो ॥२॥ जिनपानूर मपर्द
हे पवीसपिगनाहो तिनकेसगसंगहि कांहे पर

साबित भी करना चाहती थी कि सती होने से इनकार करना केवल व्यक्तिगत भय न होकर एक महान उद्देश्य था।

मेवाड़ के प्रथम श्रेणी के सामंतों में चुण्डावतों का नाम भी आता है। इन्हीं चुण्डावतों में से एक सामंत की पत्नी ने अपने पति के युद्ध भूमि में जाने से पहले अपना सिर काटकर पति को भेंट कर दिया था। युद्ध वस्तुतः ऐसा था कि उसमें उसके पति की मृत्यु निश्चित थो। अतः रानी ने पति की मृत्यु के बाद सती होने से ज्यादा पहले ही मर जाना उचित समझा। इसी प्रकार जौहर एवं सामूहिक सती प्रथा मीरां युग का अंग बन चुकी थी, किंतु मीरां के सती होने के प्रश्न पर सामंतों में भी परस्पर फूट पड़ चुकी थी। इसका मुख्य कारण राजनैतिक था। यदि मीरां न रहती तो मेड़तियों के मेवाड़ में राजनैतिक हस्तक्षेप का कोई आधार शेष न रहता। अतः मीरां के पूर्ववर्ती आलोचकों द्वारा यह तर्क देना कि उस समय किसी स्त्री को सती होने हेतु बाध्य नहीं किया जाता था, अनुचित होगा। यदि मीरां को जबरन सती नहीं किया गया तो इसका कारण राजपूतों की उदारता नहीं वरन् कुछ राजनैतिक कारण थे। दूसरे स्वयं मीरां भी राजमहल में विशिष्ट राजनैतिक हैसियत रखती थी एवं नया महाराणा उससे बहुत छोटा था।

चित्तौड़ का महाराणा महल जहां कि महाराणा का परिवार रहता था। एक विस्तृत महल है। इस महल में कुछ अंधेरे तहखाने भी हैं। ये अंधेरे तहखाने आज भी इन महलों में देखे जा सकते हैं। आस-पास के प्रदेशों में यह किवदंती प्रचलित है कि मीरां की सास तथा महाराणा की माँ ने मीरां को यहां छोड़कर बाहर से तहखाना बंद कर दिया था।[6] इस किवदंती की सत्यता प्रमाणित करने हेतु हमारे पास कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है तथापि राजमाता द्वारा ऐसा किया जाना राजनैतिक कारणों की ओर अवश्य संकेत करता है। यदि यह किवदंती सही है तो मीरां को जिन तहखानों में कैद किया गया होगा, जो कि भूत महल के नाम से प्रसिद्ध थे, वे ही रहे होंगे जो महाराणा महल के अंदर स्थित है। संभवतः यहां बंदियों को कैद करके मार डाला जाता होगा। अतः ये भूत महलों के नाम से प्रसिद्ध हो गए थे।

लोक परम्परा में जो प्रसिद्ध है वह इस बात की ओर संकेत करता है कि महाराणा के द्वारा दी गई प्रताड़ना से तंग आकर मीरां ने चित्तौड़ छोड़ दिया था। आगे हम

देखते हैं कि चित्तौड़ छोड़कर मीरां अपने पीहर मेड़ता जाती है। मीरां जब तक मेड़ता पहुंचती है तब तक मेड़ता जोधपुर के राजा मालदेव के आक्रगण का शिकार हो चुका होता है। मीरां के पीहर वाले मेवाड़ की राजनीति पर नियंत्रण करना तो दूर स्वयं अपनी जागीर बचाने के लिए भी संघर्ष कर रहे थे। अब मेड़तियों की यह स्थिति नहीं रह गई थी कि वे मेवाड़ में अपनी महत्त्वाकांक्षा को किसी परिणति तक पहुंचा पाते। अत: चित्तौड़ के राजमहल में मीरां के रूकने का भी कोई स्पष्ट कारण शेष नहीं रह गया था। मीरां ने शेष जीवन चित्तौड़ एवं चित्तौड़ की राजनीति से दूर रहकर बिताने का निश्चय किया एवं यहीं से मीरां वृंदावन के लिए प्रस्थान करती है।

मीरां का उद्देश्य अन्य भक्त कवियों की तरह मुक्ति प्राप्त करना नहीं था वरन् मुक्ति की अवधारणा से ही राजकुल की इस कुलवधू का विरोध था। वह न तो सती होकर मुक्ति चाहती थी एवं न ही भक्ति के द्वारा मुक्ति प्राप्त करने की ही आकांक्षिणी थी। भक्ति मीरां के लिए एक माध्यम था - श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों की स्थापना का, अर्थात् भक्ति साधन था साध्य नहीं।

मीरां ने अपने राजनैतिक, व्यक्तिगत एवं सामाजिक उद्देश्यों के लिए भक्ति का उपयोग किया। यही कारण था कि परवर्ती समय में मीरां कूटनीतिज्ञ के रूप में नहीं वरन् भक्त के रूप में प्रसिद्ध हुई। मीरां की सामाजिक मोर्चे पर अभूतपूर्व सफलता के बावजूद वह एवं मेड़तिया राठौड़ राजनीतिक मोर्चे पर असफल रहे थे। अत: आने वाले समय ने मीरां को एक भक्त के रूप में ही याद किया। मीरां की यह भक्ति निश्चित रूप से चितौड़ की परिस्थितियों की देन थी किंतु जब वह एक बार भक्त बन गई तो उसके साथ अनेक किवदंतियाँ भी जुड़ती गई। पहले विभिन्न सम्प्रदायों ने मीरां को अपने सम्प्रदाय की अनुयायी बताया फिर जब बात इससे भी नहीं बनी तो ऐसी अनेक किवंदतियाँ गढ़ ली गई कि मीरां ने बचपन में उन-उन आचार्यों का शिष्यत्व ग्रहण किया अथवा यह कहा गया कि मीरां को बचपन में उस सम्प्रदाय के उस आचार्य ने भक्ति की दीक्षा दी थी। इनमें से अधिकांश किवदंतियाँ मीरां के बचपन से ही जुड़ी हुई हैं। इसका स्पष्ट कारण था। कोई भी सम्प्रदाय विवाह के बाद मीरां को भक्ति की शिक्षा देने का दावा करके मेवाड़ राजघराने के कोप का भाजन नहीं बनना चाहता था। मीरां के महलों तक पहुंचना तो दूर दुर्ग के दरवाजे

से लेकर महाराणा महल के त्रिपोलिया दरवाजे तक पहुंचना भी हर किसी के बस की बात नहीं थी। अतः उनका यह दावा करना कि विवाहोपरान्त उन्होंने मीरां को भक्ति की दीक्षा दी, आम जनता में विश्वसनीय नहीं हो सकता था। मेड़ता का राजपरिवार 'साधु सत्कार' एवं भक्ति के लिए प्रसिद्ध था। अतः मीरां को भक्ति की दीक्षा से संबंधित सारी किवदंतियाँ एवं दावे उसके बचपन से जुड़े हुए हैं। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि मीरां को बचपन से ही कृष्णभक्त मान लिया गया एवं मीरां की छवि सामाजिक आंदोलन की अग्रगामी नेता एवं चतुर कूटनीतिज्ञ के रूप में निर्मित न होकर भक्त के रूप में निर्मित हो गई। परंतु पुरातात्त्विक साक्ष्य एवं ऐतिहासिक विश्लेषण कुछ और ही कहानी प्रस्तुत करते हैं।

मीरां ने न तो चारभुजादेव की ही आराधना की जो कि मेड़तियों के कुलदेव थे एवं न ही एकलिंगनाथ की ही आराधना की जो कि सिसोदियों के कुलदेव थे। मीरां ने एक नए ही ईश्वर की आराधना की जो कि कृष्ण थे। एक अल्पवय बालक से आराधना के स्तर पर इस क्रांतिकारी बदलाव की आशा करना प्रायः निरर्थक है। बालक उसी देव की आराधना करता है जिसकी प्रायः उसके माता-पिता एवं परिवार वाले करते हैं। परंतु मीरां आराध्य देव के स्तर पर मौलिक परिवर्तन लायी तो निश्चय ही यह किसी परिपक्व मन का ही निर्णय था, न कि किसी बालिका का। यदि मीरां को बचपन से ही भक्त माना जाएगा, तो उसकी छवि बतौर भक्त ही अधिक उभरती है। यदि ऐसा नहीं माना जाता है तो मीरां की छवि एक ऐसी कुलवधू के रूपमें उभरने लगती है जिसने भक्ति को विद्रोह एवं सामाजिक क्रांति का मुख्य हथियार बनाया।

मीरां के नाम पर प्रचलित कुछ पदों को लेकर यह संदेह व्यक्त किया जाता है कि मीरां का संबंध नाथ सम्प्रदाय से था। वह पद इस प्रकार है-

जोगिया से प्रीत किया दुःख होई
प्रीत किया सुख ना मोरी सजनी जोगी मीत न होई।
रात-दिवस कल नाहिं परत है तुम मिलियाँ बिन मोई।।
ऐसी सूरत या जग मोंही फेरि न देखी सोई।
मीरा रे प्रभु कब रे मिलोगे मिलियाँ आनंद होई।।[7]

वास्तविकता यह है कि ऐसा भ्रम तब उत्पन्न होता है जब हम मीरां को किसी विशिष्ट भक्त परम्परा में वर्गीकृत करने पर उतारू होते हैं। जब मीरां भक्त ही नहीं थी, तब उसे किसी विशिष्ट भक्त परम्परा में वर्गीकृत कैसे किया जा सकता है? जहाँ तक नाथों के प्रभाव का प्रश्न है एक किवदंती इस प्रकार है कि बाल्यावस्था में मीरां का सम्पर्क निवृत्तिनाथ नामक किसी योगी से हुआ जिससे मीरां ने योग की शिक्षा ग्रहण की थी। ऐसी भी किवदंती है कि मीरां को जब तहखाने में छोड़ दिया गया था तब मीरां योगासन लगाकर उस अंधेरे तहखाने में बैठ गई थी एवं मीरां के मस्तक से निकलने वाली आभा ने तहखाने को प्रकाशमान कर दिया था।[8] चित्तौड़ में नाथ योगियों के प्रभाव का पहले ही उल्लेख किया जा चुका है। अंततः निष्कर्ष यही निकलता है किवदंतियाँ एवं कुछ पद मीरां व नाथों के सम्पर्क का उल्लेख अवश्य करते हैं परंतु यह सम्पर्क कभी भी घनिष्ठ नहीं रहा। राजपरिवारों की बाध्यता भी थी कि वे सभी धार्मिक गुरूओं और प्रचारकों को प्रसन्न रखें क्योंकि इन धर्मगुरूओं का मध्यकालीन जनता पर व्यापक असर रहता था। राजनीति के इसी सिद्धांत का अनुसरण करते हुए मीरां ने भी अन्य भक्तों व संतों की तरह नाथ योगियों को भी सम्मान दिया। मीरां की भक्ति नाथ योगियों से किसी प्रकार का मेल नहीं खाती। स्वयं नाथ परम्परा में मीरां का उल्लेख बहुत कम हुआ है। आधारभूत सत्य यही है कि नाथ परम्परा से मीरां का किसी प्रकार का संबंध स्थापित करना सर्वथा असंगत ही होगा।

मेवाड़ तथा आसपास के क्षेत्र में जो किवदंतियाँ प्रचलित हैं वे मीरां के दाम्पत्य जीवन पर उल्लेखनीय प्रकाश डालती हैं। वीरमदेव की पत्नी गोरज्या बाई (गिरिजा बाई) महाराणा रायमल की पुत्री तथा सांगा की बहिन थी।[9] इस प्रकार मीरां के ताऊ वीरमदेव मीरां के पति कुवंर भोजराज के फूफा लगते थे। कुंवर भोजराज अपनी बुआ को लेने जब मेड़ता आए तभी मीरां से भोजराज की पहली मुलाकात हुई थी। बाद में भोज एवं मीरां में विवाह संबंध स्थापित हो गया। मीरां व भोज के विवाह के संबंध में कुछ अत्यंत ही रोचक किवदंतियाँ प्रचलित हैं जैसे कि अग्नि के फेरे लेते समय मीरां ने कृष्णमूर्ति को अपने साथ रखा था अतः अग्नि से फेरे अंततः कृष्ण के साथ ही हुए न कि भोज के साथ। इसी प्रकार राजपूताने में विवाह पश्चात् दोवड़ा व जुआ की रस्म होती है जिसमें दूल्हे

को दुल्हन के हाथ में बंधे धागे की सात गांठें एक हाथ की मदद से खोलनी होती है जब कि दुल्हन को दोनों हाथों की मदद से दूल्हे के हाथ में बंधे धागे की सातों गांठें खोलनी होती है। इसी प्रकार सात बार हल्दी मिली छाछ में अंगूठी फेंक दी जाती है। दूल्हा अथवा दुल्हन में से जो कोई सर्वाधिक बार अंगूठी को छाछ से ढूंढ कर निकाल देता है वह उस खेल में जीता हुआ माना जाता है। कहा जाता है कि इस खेल में जीतने वाला व्यक्ति शेष वैवाहिक जीवन में अपने जीवन साथी पर जीत हासिल करता है। इस प्रकार के खेलों में दूल्हे व दुल्हन में परस्पर छीना-झपटी होती है जिसमें दोनों के हाथ एक-दूसरे को स्पर्श करते हैं। मीरां के सन्दर्भ में किवदंतियाँ है कि न तो इस खेल में ही एवं न ही सुहागरात एवं शेष वैवाहिक जीवन में मीरा व उसके पति भोजराज के मध्य किसी प्रकार का शारीरिक सम्पर्क रहा। कुछ लोगों ने भोज की इस ब्रह्मचर्य व्रत के लिए प्रशंसा भी की है।[10] परिस्थितियों का तकाजा कुछ और ही कहानी प्रस्तुत करता है। वस्तुतः मेवाड़ प्रदेश में ऐसी एक भी कहानी अथवा कथा नहीं मिलती है जिसमें मीरां को पति द्वारा प्रताड़ित करने का उल्लेख हो। इससे अनुमान होता है कि मीरां व उसके पति के मध्य संबंध मधुर थे। मीरां के कष्टों की वास्तविक शुरूआत पति की मृत्यु के बाद ही होती है तब से बतौर विधवा को प्रताड़ित करने के प्रयास होते हैं। मीरां के विद्रोह की शुरूआत भी यहीं से होती है। पहले वह सती होने से इनकार करती है एवं बाद में उसे विधवा का कष्ट भोगने के लिए बाध्य करने पर वह घोषणा करती है कि वह विधवा का कष्ट भोगने के लिए अभिशप्त अथवा बाध्य नहीं है कारण कि वह कृष्ण को अपना पति मानती है। वास्तव में मीरां का व्यक्तित्व निर्माण भी यहीं से होना आरंभ होता है।

विधवा विवाह के विरोधी तथा शुचितावादी लोगों ने बाद में मीरां की 'शुचिता' एवं कथित 'पवित्रता' बनाए रखने के लिए ऐसे किस्से कहानी गढ़ने आरंभ कर दिए कि जिससे ऐसा आभास होता है कि मीरां व उसके पति का संबंध परस्पर मित्र अथवा सखा से ज्यादा नहीं था तथा उनमें किसी प्रकार का शारीरिक संसर्ग नहीं हुआ एवं न ही उन्होंने एक दूसरे को स्पर्श किया। मीरां व कुंवर भोजराज के विवाह संबंधी एवं विवाह पूर्व घटनाओं के जो उल्लेख मिलते हैं उससे ज्ञात होता है कि विवाह पूर्व भी कुंवर भोजराज एवं मीरां का परस्पर परिचय था। इस आधार पर मीरां व भोजराज के विवाह को

प्रेम विवाह भले ही न कहे पर विवाह पूर्व परिचय तो मानना ही पड़ेगा। मीरां की भक्ति से उसके पति अथवा श्वसुर की किसी प्रकार की नाराजगी का कोई उल्लेख अथवा कथा नहीं मिलती है एवं न ही मीरां के ज्येष्ठ देवर रतनसिंह एवं मीरां के परस्पर विवाद का कहीं कोई संकेत अथवा कथा मिलती है। उल्लेखनीय है कि रतनसिंह की माँ रक्त संबंध के आधार पर मीरां के वंश के करीब थी। वास्तविक विवाद की शुरूआत महाराणा विक्रमादित्य के राज्यभिषेक के बाद ही होती है। इस प्रकार मीरां के वैवाहिक जीवन से संबंधित किवदंतियों, उल्लेखों व कथाओं के विस्तृत विवेचन के पश्चात् यही निष्कर्ष निकलता है कि मीरां का वैवाहिक जीवन सुखद तथा बतौर युवरानी वह अपने अधिकारों का भरपूर उपयोग करती थी; परंतु भोजी की मृत्यु के साथ ही राजमहल में मीरां की स्थिति लगातार दुर्बल होने लगती है। बतौर पत्नी मीरां व भोज के परस्पर शारीरिक संसर्ग को झूठा बताना भी वास्तविकता, प्रचलित परम्पराओं और वस्तुस्थिति की अवहेलना करना होगा। नि:संदेह इस प्रकार की किवदंतियों में शुचितावादी आग्रह ही अधिक प्रदर्शित होते हैं।

मीरां के ताऊ वीरमदेव मेवाड़ के जमाई थे। एक कहानी इस प्रकार प्रचलित है कि वीरमदेव अपनी गर्भवती पत्नी गोरज्या बाई के पुत्र जन्म के अवसर पर अपने ससुराल चित्तौड़ आए। शर्म के कारण एक दिन रात का खाना ढंग से नहीं खा सके एवं रात में उठकर घोड़ों के खाने के लिए रखी गई रकाब खा गए। धीरे-धीरे यह बात पूरे महल में फैल गई। सांगा की पत्नी हाड़ी रानी ने इसका बहुत मजाक बनाया और अपने पति से कहा कि रकाब खाने वालों की भतीजी को अपनी कुलवधू बनाना क्या ठीक होगा। अगले दिन राणा सांगा ने मदिरा पान कराए हाथी को वीरमदेव के महलों के बाहर भेज दिया। कहते हैं कि वीरमदेव ने इस मदमत्त हाथी को मार डाला और महाराणा से कहा कि मेड़तियों की परीक्षा लेने के लिए यह सब करने की क्या जरूरत थी? वे तो हमेशा एकलिंगजी के दीवान (श्री जी अर्थात् महाराणा) के लिए अपनी जान तक देने के लिए हर समय तैयार है।[11] इस कहानी से हम जिस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं, वह यह कि हाड़ी रानी नहीं चाहती थी कि मेवाड़ के युवराज व सांगा के ज्येष्ठ पुत्र कुंवर भोजराज का विवाह मेड़तियों से हो क्योंकि ऐसी स्थिति में हाड़ाओं का पलड़ा कमजोर होना तय था। महाराणा सांगा मेड़तियों से विवाह संबंध चाहते थे, इसकी एक वजह तो यह थी कि सांगा

राठौड़ों की आपसी एकता के विरोधी थे क्योंकि राठौड़ संघ मेवाड़ की एकता व अखण्डता के लिए खतरा हो सकता था। जोधपुर के संस्थापक जोधा के समय यह हो चुका था एवं परवर्ती समय में भी गोड़वाड़ की भूमि को लेकर मेवाड़ व मारवाड़ में संघर्ष होता रहता था तथापि अरावली पर्वतमाला एक सीमारेखा का कार्य करती थी। मेड़तियों की वीरता से भी सांगा प्रभावित थे जैसा आने वाले समय में खानवा के युद्ध में मीरां के पिता रतनसिंह तथा ताऊ रायमल ने अपने प्राणोत्सर्ग द्वारा सिद्ध किया। मीरां का भाई जयमल भी चित्तौड़ किले में अकबर की गोली का शिकार हुआ।[12] अत: मीरां के मेवाड़ में विवाह के राजनैतिक महत्त्व से इनकार नहीं किया जा सकता। दूसरे हाड़ाओं व मेड़तियों के संघर्ष की बात भी हमें स्वीकार करनी पड़ेगी जिसके पुष्ट प्रमाण हमें अनेक किस्से-कहानियों एवं कुछ ऐतिहासिक स्रोतों से मिल जाते हैं।

प्राय: प्रश्न उठाया जाता है कि क्या मीरां को सती होने के लिए बाध्य किया गया था? उत्तर इतना सरल नहीं है परंतु सत्य यही है कि मीरां सती नहीं हुई और उसने संघर्ष का रास्ता चुना। तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए भी ऐसा लगता है कि मीरां को बलात् सती होने के लिए बाध्य भले ही न किया गया हो परंतु उसे ऐसा करने के लिए मानसिक दवाब में अवश्य लाया गया होगा जिसका प्रत्युत्तर मीरां ने स्वयं की मानसिक दृढ़ता प्रदर्शित करके दिया। मीरां के इस प्रत्युत्तर का सामंती समाज ने भले ही विरोध किया हो परंतु लोक ने इसे सहर्ष स्वीकार किया।

मीरां ने जिस प्रकार कथित कुल मर्यादा एवं पर्दे का त्याग किया। ठीक इसी प्रकार का एक प्रगतिशील उदाहरण मेवाड़ की राजनीति में और भी मिलता है जिसमें मेवाड़ के महाराणा ने एक विधवा स्त्री से विवाह किया एवं उसे अपनी रानी बनाया। यद्यपि यह विवाह धोखे में हुआ था तथापि विवाह के पश्चात् महाराणा ने उसे रानी स्वीकार किया एवं आगे जाकर उससे एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ। घटना इस प्रकार है कि अलाउद्दीन के किलेदार मालदेव ने महाराणा हम्मीर को धोखे से मारने के लिए अपनी बेटी से विवाह प्रस्ताव के रूप में नारियल भेजा। मालदेव की यह पुत्री पहले से ही किसी भाटी राजपूत के साथ ब्याही जा चुकी थी जो बाद में विधवा हो गई थी। यह सोचकर कि विधवा और क्या विधवा होगी विवाह के पश्चात् महाराणा हम्मीर को मारने की योजना बनाई गई। नई

विवाहिता ने राणा पर आक्रमण से पहले ही सारी बात राणा से कह डाली एवं आक्रमण होने से पहले ही सजगता के कारण महाराणा आक्रमणकारियों को पराजित करने में सफल रहा। महाराणा हम्मीर की उस पत्नी से आगे चलकर जो पुत्र हुआ वह इतिहास में खेता (षेता-पुरानी लिपि में) अथवा क्षेत्रपाल के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अतः मेवाड़ राजवंश को मजाक में विधवा के पूत अर्थात् विधवा के बेटों का राजवंश भी कहा जाता है। इसी प्रकार मारवाड़ के इतिहास में भी एक घटना प्रसिद्ध है जिसमें महाराजा की रानी ने महाराजा की उपेक्षा से दुःखी होकर परिणीता होकर भी दूसरा प्रेमविवाह कर लिया था। इन घटनाओं के उल्लेख का उद्देश्य उस युग की सामाजिक स्थिति से अवगत होना है। साथ ही उन घटनाओं का संबंध मीरां के परिवार से है।[13]

पति भोजराज एवं महाराणा सांगा की मृत्यु के पश्चात् मीरां अपने पीहर मेड़ता गई थी। वहां से वापस लौटते समय मीरां ने देखा कि मालवा एवं गुजरात के सुल्तानों ने चित्तौड़ पर धावे बोलना एवं मेवाड़ में लूट-मार आरंभ कर दी थी। मीरां ने ससुराल लौटते समय अपने प्रजाजनों के दुःख-दर्द भी सुने एवं उन्हें यथायोग्य मदद सहायता भी दी। कहते हैं कि मीरां ने अपने सारे गहने एवं कीमती सामान प्रजा में बांट दिए थे। यदि सूक्ष्मता से देखें तो मीरां का यह कार्य एक चतुर राजनीतिज्ञ के कृत्यों के समान था। इन घटनाओं से प्रजाजनों के मध्य मीरां की लोकप्रियता न केवल तेजी से बढ़ी वरन् अनेक सामंतों व प्रजा में विक्रमादित्य की अलोकप्रियता तेजी से बढ़ने लगी। लोग धीरे-धीरे मीरां के पक्ष में तथा महाराणा विक्रमादित्य के विरूद्ध आवाज उठाने लगे। जब मीरां अपने ससुराल पहुंची तो मीरां के इस कृत्य के लिए महाराणा विक्रमादित्य ने न केवल नाराजगी व्यक्त की वरन् आगे से ऐसा न करने की हिदायत भी दी।[14] दीन-दुःखियों में धन व गहने बांटना किसी को भी बुरा नहीं लग सकता परंतु यदि इसमें राजनीतिक कारण विद्यमान हो तो प्रश्न कुछ और हो जाता है। वैसे भी मीरां का इस प्रकार का कार्य भक्त जैसा कार्य न होकर एक राजनेता जैसा कार्य था एवं जनता में लोकप्रियता पाने का साधन। इस प्रकार मीरां के नाम से प्रचलित किवदंतियों का गहन विश्लेषण करें तो कुछ और ही सत्य सामने आता है।

मेवाड़ की आबादी का विश्लेषण करें तो उसमें मुस्लिम आबादी कभी भी बहुतायत में नहीं रही। जो थोड़े बहुत मुस्लिम मेवाड़ में थे उनमें से अधिकतर सैनिक सेवाओं में थे एवं उनके अपने व्यक्तिगत स्वार्थ मेवाड़ से जुड़े हुए थे। अतः मीरां के यहां हिंदू-मुस्लिम एकता को लेकर किसी प्रकार की कोई विशेष चिंता देखने को नहीं मिलती है। तथापि कुछ उल्लेख ऐसे अवश्य मिलते हैं जिसमें मीरां की भक्त मंडली में मुस्लिम दर्शनार्थियों के आने का उल्लेख है। एक किवदंती इस प्रकार प्रचलित है कि एकबार सारंगपुर का नवाब अपने वज़ीर के साथ चित्तौड़ में मीरां के भजन सुनने एवं मीरां को देखने के लिए हिन्दुओं के वस्त्र धारण करके आया एवं भजन सुनने के बाद जब वह स्वयं को रोक नहीं सका तो उसने उर्दू में मीरां की प्रशंसा में कुछ कह डाला। इससे लोगों का ध्यान उनके मुस्लिम होने की ओर गया किंतु तब तक शीघ्रता से नवाब व उसका वज़ीर चित्तौड़ की सीमा पार कर चुके थे। ठीक इसी प्रकार एक किवदंती यह भी प्रचलित है कि मीरां जब वृंदावन में थी तब बादशाह अकबर अपने दरबारी बीरबल के साथ हिंदू वेश धारण कर मीरां को देखने व भजन सुनने आया था किंतु मीरां ने उन दोनों को ही पहचान लिया एवं फिर मीरां, अकबर व बीरबल के मध्य राजनीति धर्म व दर्शन पर लम्बी बातें हुई। इन किवदंतियों में सत्य का कितना अंश है यह कहना तो मुश्किल है, परंतु इससे यह तो जाहिर हो ही जाता है कि न केवल हिंदुओं वरन् मुस्लिम प्रजा में भी मीरां को लेकर आकर्षण था।[15] यह भी संभव है कि बाद के समय में मीरां के प्रशंसकों ने इस प्रकार की किवदंतियाँ बना दी हो।

जब एक बार मीरां को विष देने एवं उसका मीरां पर असर न होने की घटना प्रसिद्ध हो गई तो बाद में मीरां को लेकर अनेक किवदंतियाँ गढ़ी जाने लगी। इन किवदंतियों में मीरां महल में शेर का आना एवं मीरां को उसका प्रणाम करके चले जाना। महाराणा का मीरां पर सैकड़ों बार तलवार से वार करना किंतु मीरां का जीवित बच जाना मीरां का इस प्रकार नृत्य करना मानों उस नृत्य क्रिया में और भी कोई सम्मिलित हो अर्थात् अदृश्य कृष्ण के साथ मीरां का नृत्य, राणा द्वारा विषैले सर्पों का पिटारा भेजना एवं उन सांपों का फूलों की माला में बदल जाना इत्यादि। ये किवदंतियाँ जहां एक ओर मीरां की तेजी से फैलती हुई लोकप्रियता की ओर संकेत तो करती ही हैं, वहीं दूसरी ओर इस बात

का भी आभास देती है कि मीरां के करिश्माई व्यक्तित्व में लोगों का विश्वास लगातार बढ़ता जा रहा था। न केवल मीरां वरन् मेड़ता में उनके भाई जयमल के साथ भी अनेक किवदंतियाँ जुड़ती जा रही थी एवं कहा जा रहा था कि स्वयं चारभुजानाथ उनके राज्य की सीमाओं की रक्षा करने के लिए तलवार लेकर युद्ध में लड़ते हैं। इन तमाम किवदंतियों का इतना ही महत्त्व है कि मीरां की लोकप्रियता में लगातार वृद्धि होती जा रही थी।

एक प्रसंग आता है कि मीरां व जीव गोस्वामी की वृंदावन में भेंट हुई थी, किंतु मीरां की भक्ति का स्वरूप दर्शन तत्त्व से नहीं मिलता था। अतः मीरां ने स्वयं को इस प्रकार की दार्शनिक भक्ति से दूर ही रखा यद्यपि वृंदावन में मीरां के अकेले बैठे-बैठे खो जाने एवं लीलामग्न हो जाने की कहानियाँ अनेक जगहों पर मिल जाती हैं।[16]

उल्लेखनीय बात यह है कि मीरां के चित्तौड़ छोड़ने तक मेड़ता की शक्ति भी नष्ट प्रायः हो चुकी थी एवं मीरां के चित्तौड़ छोड़ने के बाद राजमहल में भी संघर्ष का कोई कारण शेष नहीं रह गया था। कहते हैं मीरां के चित्तौड़ छोड़ने के ठीक पश्चात् मेवाड़ में भयंकर अकाल पड़ा, लोग त्राहि-त्राहि करने लगे। मध्यकालीन अकाल प्रायः भयंकर होते थे। राजस्थान जैसे सूखे प्रदेश में तो इनकी भयंकरता और भी अधिक थी। अब तक आम जनता में मीरां की दैवीय शक्ति एवं कृष्ण की प्रेमिका के रूप में प्रसिद्धि फैल चुकी थी। लोगों में तथा मेवाड़ के राजपरिवार में यह बात घर कर गई थी कि यह सब मीरां को प्रताड़ित करने का नतीजा है। मेवाड़ की जनता का ही नहीं वरन् कुछ सामंती परिवारों की ओर से भी नए महाराणा उदय सिंह पर यह दबाव था कि मीरां को किसी भी प्रकार मेवाड़ वापस बुलाया जाए। इस समय मीरां द्वारिका चली गई थी मेड़तियों, हाड़ाओं का संघर्ष भी समाप्त हो चुका था एवं मेड़ता पहले जैसी ताकत न नही रहा गया था। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए नए महाराणा उदयसिंह ने मीरां को वापस मेवाड़ बुला लाने का निश्चय किया एवं मीरां को बुलाने के लिए कुछ प्रथम श्रेणी के सामंत एवं मेड़ता व मेवाड़ के पुरोहित द्वारिका भेजे।[17]

किवदंती है कि मीरां यहीं द्वारिका में कृष्ण की मूर्ति में विलीन हो गई। आज भी यह स्थल द्वारिका में बैठ द्वारका के नाम से प्रसिद्ध है। कहते हैं कि मीरां की मूर्ति में विलीनता के क्रम में साड़ी का एक टुकड़ा शेष रह गया था। साड़ी का यही

टुकड़ा इस बात का प्रमाण था कि मीरां कृष्ण की मूर्ति में विलीन हो गई। आज के युग में यह मानना तो अविश्वसनीय है कि मीरां कृष्ण की मूर्ति में विलीन हो गई होगी तथापि इसका निश्चित उत्तर ढूंढ़ना भी अनिवार्य है। मीरां का कृष्ण की मूर्ति में विलीन होना आज 21वीं सदी में ही नहीं वरन् मध्यकाल में भी अविश्वनीय रहा होगा। इसीलिए द्वारिका के पंडों ने मीरां की प्रसिद्धि को भुनाने व उससे अर्थोपार्जन करने के लिए मूर्ति में साड़ी के पल्लू के बचे रहने की मनगढन्त कहानी बनायी एवं कृष्ण की मूर्ति में कोई साड़ी का पल्लू ठूंस दिया होगा ताकि लोगों को यह विश्वास दिलाया जा सके कि मीरां का विलीनीकरण मूर्ति में ही हुआ है, अन्यथा मीरां के मूर्ति में विलीनीकरण के पश्चात् केवल साड़ी के पल्लू के बचे रहने का कोई विशेष प्रयोजन नहीं बचता, सिवाय इसके कि इससे लोगों का विश्वास प्राप्त करके इस चमत्कारिक मूर्ति के नाम पर सैकड़ों रूपयों की भेंट वसूली जाए। यह भी संभव है कि मीरां की मृत्यु के सैकड़ों वर्ष पश्चात् द्वारिका के पंडों ने मीरां के विलीनीकरण की बात गढ़ ली हो ताकि मीरां के द्वारिका प्रवास की घटना का उपयोग अर्थोपार्जन के लिए कर सके। वजह चाहे जो रही हो किंतु इस किवदंती का विस्तृत विवेचन जरूरी है। क्योंकि इसका संबंध मीरां की मृत्यु से है।

कुछ विद्वानों का कहना है कि इसी बैठ द्वारका में मंदिर के पीछे समुद्र में कूदकर मीरां ने आत्महत्या कर ली। वह मीरां जिसने जीजिविषा के चलते जीवन भर संघर्ष किया बतौर विधवा उसे मानसिक प्रताड़ना देने वालों का पूरी मानसिक दृढ़ता के साथ जवाब दिया एवं जो अकेली न केवल सामंती समाज वरन् ब्राह्मणों से भी लोहा लेती रही हो अपनी प्रसिद्धि के चरम पर आत्महत्या कर ली हो, ऐसा विश्वास करना आसान नहीं लगता। निश्चय ही मीरां ने आत्महत्या नहीं की होगी तथापि इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि द्वारिका में पुरोहितों व सामंतों द्वारा मीरां को लौटने के लिए भूख हड़ताल द्वारा बाध्य करने की घटना के पश्चात् मीरां से संबंधित न तो किसी घटना का कोई उल्लेख मिलता है एवं न ही किसी प्रकार की कोई किवदंती। शोध छात्रा परिता मुक्ता का निष्कर्ष है कि द्वारिका से मीरां अपनी पहचान को गुप्त रखकर वहीं गुजरात की कुछ ऐसी जातियों में विलीन हो गई जहां स्त्री स्वतंत्रता को अपेक्षाकृत अधिक सम्मान प्राप्त था।

दक्षिण भारत के अनेक मंदिरों में आज भी मीरां के भजन लोकप्रिय हैं। इस आधार पर अनेक विद्वानों का यह भी निष्कर्ष है कि द्वारिका के पश्चात् मीरां संभवत: दक्षिण चली गई होगी। यही कारण है कि दक्षिण में भी मीरां के भजन लोकप्रिय हैं। विद्वानों के इस निष्कर्ष को सही मानना भी विश्वसनीय नहीं लगता क्योंकि दक्षिण में मीरां के भजनों की लोकप्रियता परवर्ती घटना भी हो सकती है। हम जानते हैं कि मुगल साम्राज्य के पतन के साथ ही मराठा एक ताकत उभरे थे। वे मालवा को रौंद चुके थे एवं मेवाड़ की सीमाओं में प्रवेश करने लगे थे। महादजी सिंधिया एवं ऐसे अन्य सेनानायकों के नेतृत्व में मराठों व पिंडारियों की सेना मेवाड़ को कितनी ही बार रौंद चुकी थी। इन सैनिक लुटेरों द्वारा लूटे गए गांवों में खेमली व गुड़ली का नाम विशेष उल्लेखनीय है। संभव है मीरां के भजन भी इन्हीं मराठा व पिंडारी लुटेरों के साथ-साथ दक्षिण में पहुंच गए हो एवं धीरे-धीरे सारे दक्षिण में लोकप्रिय हो गए हो, उस समय स्वयं मराठा समाज सामाजिक क्रांति के दौर से गुजर रहा था।[18] मीरां के भजनों की क्रांतिकारिता के कारण तेजी से वहां की जनता में ये भजन लोकप्रिय हो गए हों। अत: भजनों के कारण मीरां के दक्षिण गमन को सत्य बताना अधिक प्रामाणिक नहीं हो सकता। फिर भी जरूरी नहीं कि हर प्रश्न का जवाब ढूंढ ही लिया जाए और भविष्य के लिए कुछ भी न छोड़ा जाए। वैसे भी मीरां की मृत्यु से ज्यादा जरूरी एवं महत्वपूर्ण उसका जीवन था जो समाज को संघर्ष की प्रेरणा देता है।

मीरां एवं तुलसी दोनों ही अपने युग के महान कवि हुए हैं। कहा जाता है कि मीरां व तुलसी में किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार हुआ था। किवदंती के अनुसार ससुराल वालों की प्रताड़ना से दु:खी होकर मीरां ने किसी सुखपाल नाम के ब्राह्मण के हाथों तुलसी को यह पत्र भेजा था-

स्वस्ति श्री तुलसी कुल भूषण-दूषण हरण गुंसाई।
बारहि बार प्रणाम करऊँ अब हरहु सोक समुदाई।।
घर के स्वजन हमारे जेते सबन उपाधि बढ़ाई।
साधु संग अरू भजन करत मोहि देत कलेस महाई।।
बालपन में मीरां कींन्हीं गिरधरलाल मिटाई।
सो तो अब छुटत नहिं क्यों हूं लगी लग्न बरियाई।।

मेरे मात पिता सम तुम हो हरिभक्तन सुखदाई।
मोंको कहा उचित करिबों अब सो लिखियों समुझाई।।

कहा जाता है कि मीरां के उपर्युक्त पत्र के प्रत्युत्तर में तुलसी ने यह खत भेजा-

जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही।।
तज्यो पिता प्रह्लाद विभीषण बंधु मरत महतारी।
बलि गुरू तज्यो कंत ब्रज बनितनि भये मुद मंगलकारी।।
नातो नेह राम को मनियत सुहृद सुसेव्य जहां लों।
अंधन कहा आँखि जेहि फूटे बहु तक कहौं कहाँ लों।।
तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रान ते प्यारो।
जासो बढ़े सनेह रामपद ऐसो मतो हमारो।।[19]

इस किवदंती में सत्यता का कितना अंश है कहना मुश्किल है। स्थान एवं परिस्थितियों का विचार करने पर तुलसी व मीरां में कोई पत्र व्यवहार हुआ होगा ऐसा संभव नहीं लगता। जिस प्रकार अकबर-बीरबल से मीरां की मुलाकात आदि किवदंतियाँ गढ़ी ली गई ठीक उसी प्रकार इसे भी उसी प्रकार की किवदंती समझा जाना चाहिए।

मीरां के संबंध में एक अन्य रोचक किवदंती प्रचलित है कि मीरां द्वापर की गोपी माधवी थी। अपने घमण्ड के कारण उसने कृष्ण की उपेक्षा की फलतः कृष्ण ने भी माधवी को लीला दर्शन से इंकार कर दिया। बाद में माधवी को भूल का अहसास होने पर उसने कृष्ण से क्षमा याचना की। कृष्ण ने उसे कलयुग में दर्शन देने की एवं उसका जन्म मीरां के रूप में होने का आर्शीवाद दिया।[20] वर्तमान समय में काल की चक्रीय अवधारणा पूर्णतयाः अमान्य है। यहाँ तक कि डी.डी. कौशाम्बी जैसे विद्वान कृष्ण की ऐतिहासिकता पर ही संदेह व्यक्त करते हैं।[21] ऐसे में माधवी का मीरां के रूप में जन्म लेना कितना सत्य हो सकता है? इस किवदंती एवं मीरां द्वारा चित्तौड़ में देवी पूजा से इंकार करने की किवदंतियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मीरां और कृष्ण लगभग पर्याय हो चुके थे। मीरां

को कृष्ण के साथ इतना अधिक संबंधित करके देखा जा रहा था कि लोग मीरां को द्वापर की माधवी ही मानने लग गए थे।

निश्चय ही किवदंतियों के विश्लेषण में सजग मस्तिष्क की जरूरत है, परंतु इतना तय है कि किवदंतियों के माध्यम से इतिहास का निर्माण भले ही संभव न हो एवं मीरां के सम्पूर्ण जीवन का इतिहास भी यद्यपि किवदंतियों के आधार पर निर्धारित करना संभव नहीं, तथापि यह सत्य है कि किवदंतियाँ इतिहास निर्माण में महत्त्वपूर्ण सहायक स्त्रोत सामग्री हैं। मीरां के जीवन के सन्दर्भ में भी इनके महत्त्व से इनकार नहीं किया जा सकता।

संदर्भः

1. मम्मी व स्वर्गीय नानी से यह पद सुना था।
2. पुजारी, मीरां मंदिर, बालकृष्ण जी का साक्ष्य।
3. जौहर स्मारिका 2005, जौहर स्मृति संस्थान, चित्तौड़, पृ.-42
4. श्री एस.एन. समदानी, चित्तौड़ का साक्ष्य।
5. यह दावा स्वयं कुछ झाला समंतों का है।
6. मेवाड़ में प्रचलित एक किवदंती।
7. नरोत्तमदास स्वामी, मीरां मुक्तावली, पृ.-13
8. कालिका मंदिर के पुजारी का कथन।
9. प्रचलित मान्यता के आधार पर।
10. सौभाग्य कुंवरी राणावत, मीरा चरित, पृ.-176
11. वही, पृ.-124
12. कविराजा श्यामलदास, वीर विनोद (भाग-2) पृ.-01

    मुंशी देवी प्रसाद, मीरांबाई का जीवन चरित्र, पृ.-24

13. मेवाड़ व मारवाड़ मे प्रचलित कथाएं।

14. बचपन में सुनी कहानी पर आधारित।

15. मीरां से संबंधित विवरणों व कहानियों के आधार पर।

16. गुजरात में प्रचलित किवदंती।

17. नाथद्वारा मंदिर में सुनी कथा के आधार पर।

18. मेवाड़ के इतिहासकारों से चर्चा का निष्कर्ष।

19. आचार्य रामचन्द्र शुल्क, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.-101

20. गुजरात में प्रचलित किवदंती।

21. डी.डी. कौशाम्बी, प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता, पृं.-149

अध्याय पांच

ऐतिहासिक विवरण एवं आलोचनात्मक ग्रंथ

अध्याय पांच

ऐतिहासिक विवरण एवं आलोचनात्मक ग्रंथ

क्रांतिधर्मिता, परम्परा विरोध, सामंतविरोध, प्रतिरोध की क्षमता एवं चमत्कारिक व्यक्तित्व के बावजूद हिन्दी आलोचना एवं इतिहासकारों ने मीरां की लगातार उपेक्षा की है। कुछ दशकों पूर्व स्थिति यह थी कि मीरां पर अध्ययन एवं अनुसंधान को हिन्दी अकादमिसिअन अनुपयोगी एवं व्यर्थ मानते थे। बुद्धिजीवी वर्ग के विपरीत लोक से मीरां को सदैव स्नेह एवं प्यार मिला तथा लोक ने उसे कभी भी विस्मृति के गर्त में जाने नहीं दिया। आज नव चेतना के परिणामस्वरूप सैकड़ों वर्षों से दमित शोषित स्त्री वर्ग पूर्ण प्रतिरोध के साथ पुरुषों की वर्चस्वशीलता को चुनौती देने के लिए तैयार है तब मीरां का प्रतिरोधी चमत्कारिक व्यक्तित्व ऐतिहासिक प्रेरणा के रूप में लोकप्रिय होता जा रहा है।

राजपूताने तथा देश के मध्यकाल से संबंधित आरंभिक इतिहास ग्रंथों पर नजर डाले तो प्रायः अधिकांश इतिहास ग्रंथ मीरां के संदर्भ में मौन नजर आते हैं। यह एक कड़वी सच्चाई है कि सांस्कृतिक तथा सामाजिक मोर्चे पर मीरां भले ही सफल रहीं हो, किन्तु राजनीतिक मोर्चे पर मीरां को अपने प्रतिद्वन्द्वियों से परास्त होना पड़ा। एक तो मीरां स्त्री थी एवं वह भी विधवा स्त्री जो स्त्रियों में भी सर्वाधिक दमित एवं शोषित वर्ग था। अपनी इसी कमजोरी के कारण मीरां का राजनीतिक संघर्ष कुछ सीमाओं के अंतर्गत ही जारी रह सकता था। इधर राठौडो के आंतरिक संघर्ष के कारण मेड़तियों की शक्ति क्षीण हो चुकी थी एवं मेड़ता व जोधपुर राज्य के संघर्ष में मेड़तियों को पराजय का मुंह देखना पड़ा था। इस संघर्ष ने न केवल मेड़ता नगर को तहस-नहस कर दिया था वरन् इसने मेड़तियों की शक्ति को गहरा आघात पहुंचाया। मेवाड़ में मीरां की सारी महत्वाकांक्षाएं मेड़तियों पर आश्रित थी। मेड़तियों के पराभव के साथ ही मेवाड़ के प्रसंग में मीरां की समस्त महत्वकांक्षाओं को गहरा धक्का लगा एवं अंततः मीरां ने राजनैतिक मोर्चे पर पराजय स्वीकार करते हुए चित्तौड़ नगर ही छोड़ दिया। राजनीतिक मोर्चे पर मीरां की इसी पराजय के कारण इतिहास ग्रंथों ने मीरां की घोर उपेक्षा की एवं उसे मध्यकालीन मेवाड़ के इतिहास से लगभग बाहर ही कर दिया एवं इसके पश्चात् मेवाड़ का जो इतिहास शेष बचा वह विजेताओं का इतिहास था जिसमें पराजित मीरां के लिए कोई स्थान नहीं था।

कर्नल जेम्स टॉड राजपूताने के आरंभिक इतिहासकारों में से एक थे। इतिहास ग्रंथों में मीरां को स्थान दिलाने का प्रथम श्रेय उन्हें ही मिलना चाहिए। कर्नल टॉड ने राजपूताने के इतिहास पर 'एनल्स एंड एंटीक्विटी ऑफ राजस्थान' नामक ग्रंथ की रचना की थी। यह ग्रंथ इतना अधिक लोकप्रिय हुआ कि इसे राजस्थान के इतिहास का संदर्भ ग्रंथ माना जाने लगा। कहा जाता है कि कर्नल टॉड ने इस ग्रंथ की रचना चित्तौड़ दुर्ग में रहते हुए की थी। आज जिसे पद्मिनी महल कहा जाता है, वहीं कर्नल टॉड का निवास स्थल था जहां से मीरां मंदिर एवं मीरां महल (कुंवरपदा के महल) थोड़ी ही दूर थे।[1] फिर भी दुर्भाग्यवश कर्नल टॉड के मीरां संबंधी उल्लेख एवं निष्कर्ष पूर्णत: गलत थे। अनुमान किया जा सकता है कि टॉड के समय तक चित्तौड़ दुर्ग में मीरां के समय के अवशेष लगभग मिट चुके होगे या मिटाये जा चुके होगे। पूरे दुर्ग में मीरां से संबंधित जानकारी देने वाला एक मात्र अवशेष था मीरां मंदिर। उस मंदिर के बारे में कहा जाता है कि उसका निर्माण मीरां ने स्वयं को प्राप्त होने वाली राजस्व राशि से करवाया था। टॉड ने राजपूताने के अपने इतिहास ग्रंथ को सन् 1829 तक लिखकर पूरा कर लिया था, जिसमें मीरां के बारे में निम्न जानकारी दी गई है-

''मीरां मेवाड़ के राणा कुंभा की पत्नी थी। वे सौन्दर्य और स्वछंद पवित्रता के लिए अपने युग की सबसे प्रसिद्ध राजकुमारी थी। उन्होंने बहुत से गीत लिखे, जो भक्तों में प्रचलित हैं। मीरां के काव्यतत्त्व से उनके पति को प्रेरणा मिली या कुंभा से उन्हें काव्य सौन्दर्य प्राप्त हुआ, यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता। भक्ति के अतिरेक एवं स्वछंदता के कारण अनेक प्रवादमूलक कथाओं को जन्म मिल गया।''[2]

कर्नल टॉड का यह विवरण गलत तथ्यों का प्रस्तुतीकरण होने के बावजूद मीरां के बारे में अनेक महत्वपूर्ण जानकारियां देता है। टॉड की सबसे बड़ी भूल यह थी कि उन्होंने मीरां को कुंभा की पत्नी बताया। टॉड के इस निष्कर्ष को परवर्ती विद्वानों ने न केवल पूर्णतया: गलत एवं व्यर्थ बताया वरन् परवर्ती समय में टॉड की मीरां संबंधी पूरी व्याख्या को ही संदेह की नजर से देखा जाने लगा। चित्तौड़ दुर्ग में स्थित कुंभश्याम मंदिर जिसका निर्माण कुंभा ने करवाया था एवं मीरां मंदिर जो मीरां को प्राप्त राजस्व राशि से निर्मित हुआ था, दोनों ही एक दूसरे के निकट स्थित हैं। कुंभा के समान ही मीरां की

प्रसिद्धि भी एक भक्त एवं संगीतज्ञ के रूप में थी। संगीत, भक्ति, विद्वता, लोकप्रियता तथा बुद्धिमता आदि बातों में मीरां व कुंभा में अनेक समानताएं थी। संभवतः इसी से प्रेरित होकर कर्नल टॉड ने मीरां को कुंभा की पत्नी बताया होगा। मीरां संबंधी टॉड की इस भारी भूल के बावजूद टॉड का मीरां संबंधी उल्लेख मीरां के बारे में अनेक जानकारियां देता है। जैसे कि मीरां सुन्दर थी एवं अत्यंत लोकप्रसिद्ध थी। मीरां के लिखे पद भक्तों के मध्य प्रसिद्ध हैं। कुंभा तथा कथित तौर पर कुंभा की पत्नी अर्थात् मीरां दोनों ही अत्यंत प्रतिभाशाली एवं एक दूसरे के गुणों से प्रभावित थे। मीरां के संबंध में सच्ची तथा झूठी अनेक किवदंतियां प्रचलित है। एवं मीरां मूलतः भक्त थी। कर्नल टॉड ने मीरां के संबंध में स्वछंद पवित्रता का उल्लेख किया है अर्थात् टॉड को मीरां के संबंध में जो जानकारी मिली थी उसमें मीरां को पवित्र बताया गया था। इसका अर्थ यह हुआ कि लोक मीरां में गंभीरता, विद्वता का दर्शन करता था, उच्छृंखलता का नहीं।

टॉड ने अपने इसी इतिहास ग्रंथ में मीरां का उल्लेख आगे के पृष्ठों में इस प्रकार किया है- ''वे मरूधर वीर मेडतिया राठौडों की शाखा के प्रवर्तक दूदा जी की पुत्री थी।''[13] टॉड ने मेडतियों को मरूधरवीर कहा एवं मीरां को दूदा की पुत्री बताया। मीरां अपने पिता की बजाय दादा के अधिक निकट थी। पाश्चात्य देशों में दादा व पोती में इतनी अधिक निकटता नहीं होती है जितनी कि भारतीय परिवारों में। यही कारण रहा होगा कि टॉड ने मीरां को दूदा की पौत्री कहने की बजाय बेटी कहना अधिक उचित समझा। कहीं-कहीं टॉड मीरां को दूदा जी की बेटी भी बताते हैं इससे भी स्पष्ट होता है कि टॉड स्वयं दूदा व मीरां के संबंध को लेकर भ्रम की स्थिति में थे।

मेवाड़ के इतिहास ग्रंथों में मीरां की चर्चा मिलना तभी आरंभ होता है जब मेवाड़ राज्य सामंती शिकंजे से धीरे-धीरे बाहर निकलने लगता है एवं मेवाड़ में राजनैतिक जनजागरण का दौर शुरू होता है। मेवाड़ के इतिहास में मीरां का पहला उल्लेख सदियों पश्चात् कविराजा श्यामलदास के 'वीर विनोद' में आता है। यह मेवाड़ का पहला व्यवस्थित इतिहास ग्रन्थ भी है जोकि महाराणा सज्जन सिंह के समय लिखा गया था। इस इतिहास ग्रंथ की केवल चार प्रतियां ही छपी थी कि मेवाड़ सरकार ने इसे जब्त कर लिया था। अनुमान किया जा सकता है कि मेवाड़ राज्य में महाराणाओं के खिलाफ कुछ भी कहना

अथवा लिखना किसी भी व्यक्ति के लिए कितना खतरनाक हो सकता था। मीरां तो हमेशा से ही महाराणाओं और सामंतवादी व्यवस्था से लोहा लेती रही थी, ऐसे में किस इतिहासवेत्ता की यह हिम्मत थी कि वह मीरां के पक्ष में कुछ भी लिखे? स्वयं कविराजा श्यामलदासजी ने भी मीरां का केवल इतना ही उल्लेख किया कि वह महाराणा सांगा की पुत्रवधू तथा राव दूदा की पौत्री थी। उनकी भक्ति एवं क्रांति के बारे में कविराजा पूरी तरह से मौन हैं किन्तु यहां सबसे महत्वपूर्ण यह है कि अन्य रानियों, महारानियों के मध्य उन्हें केवल मीरां ही उल्लेख योग्य लगी। कोई और राजकुल से संबंध रखने वाली स्त्री कविराजा के 'वीर विनोद' में अपना यथायोग्य स्थान न बना सकी। कविराजा का 'वीर विनोद' में मीरां संबंधी उल्लेख भी इस रूप में आता है मानों सांगा, दूदा व भोज की पहचान भी मीरां के कारण है न कि मीरां की पहचान उनसे बनती है। कविराजा का मीरां संबंधी वर्णन इस प्रकार है-

''महाराणा सांगा (संग्रामसिंह) के सात पुत्र हुए - 1 पूर्णमल्ल, 2. भोजराज, 3. पर्वतसिंह, 4. रत्नसिंह, 5. विक्रमादित्य, 6. कृष्णसिंह और 7. उदयसिंह। 1. पूर्णमल्ल, 2. भोजराज, 3. पर्वतसिंह और 6. कृष्णसिंह - चार तो महाराणा सांगा के सामने ही परलोक सिधारे, इनमें से 2. भोजराज, जो सोलंखी रायमल की बेटी के गर्भ से जन्में थे, उनका विवाह, मेड़ते के (1) रावदूदा जोधावत के पांचवें बेटे, रत्नसिंह की बेटी, मीरांबाई के (2) भोजराज साथ हुआ था। मीरांबाई बड़ी धार्मिक और साधुसंतों का सम्मान करने वाली थी। यह विराग के गीत बनाती और गाती, इससे उसका नाम अबतक बहुत प्रसिद्ध है

महाराणा सांगा के देहांत के समय सात में से तीन पुत्र - रत्न सिंह, विक्रमादित्य और उदयसिंह - बाकी रहे। इनमें से रत्न सिंह गादी विराजे, और छोटे विक्रमादित्य और उदयसिंह रणथंभौरे* के मालिक बने।

इनको रणथंभौर की मालिकी मिलने का कारण यह है, कि बूंदी के राव भांडा के दूसरे बेटे नरबद की बेटी कर्मवती बाई, महाराणा सांगा को व्याही गई थी। उसके गर्भ से विक्रमादित्य और उदयसिंह हुए। महाराणा सांगा महाराणी हाड़ी कर्मवती से अधिक प्रसन्न थे।''

*रणथंभौर यह मशहूर किला इस समय जयपुर के राज्य में है-

नीचे फुटनोट में कविराजा मीरां के संबंध में कुछ और महत्वपूर्ण जानकारियां देते हैं जैसे कि -

"(1) मेड़ता - जोधपुर के राज्यों में एक कस्बा है जिसके नाम से एक परगना 'मेड़ता की पट्टी' कहाता है।

(2) कर्नल टॉड साहब, मीरांबाई को महाराणा कुंभाकी राणी लिखते हैं परन्तु यह बात ठीक नहीं है, क्योंकि रावजोधाने विक्रमी 1515 (= हि. 862 = ई. 1948) में जोधपुर बसाया विक्रमी 1525 (= हि. 872 = ई. 1468) में महाराणा कुंभा का देहांत हुआ। विक्रमी 1542 (= हिजरी 890 = ई. 1485) में रावदूदा जोधावत को मेड़ता (झामा देव के वरदान से) मिला। विक्रमी 1584 (= ई. 933 = ई. 1527) में महाराणा सांगा और बाबर बादशाह की लड़ाई में, दूदा के दो बेटे वीरमदेव और रत्नसिंह (मीरांबाई का पिता) मारे गये, और वीरमदेव का बेटा जयमल्ल विक्रमी 1624 (= हि. 975 = ई. 1548) में चित्तौड़ पर अकबर की लड़ाई में मारा गया।

1. सोचना चाहिए कि महाराणा कुंभा के वक्त दूदा को मेड़ता ही नहीं मिला था; फिर दूदा की पोती मीरांबाई मेड़तणी कुभ्भा की राणी किस तरह हो सकती है?

2. महाराणा कुभा के देहांत से 59 वर्ष पीछे बाबर और महाराणा सांगा की लड़ाई में मीरांबाई का बाप रत्नसिंह मारा गया; तो महाराणा कुंभा के वक्त में (टॉड साहब का लिखना ठीक समझा जाय तो) रत्नसिंह की अवस्था चालीस वर्ष से कम न होगी; इस हिसाब से मारे जाने के वक्त सौ वर्ष के आसरे होनी चाहिए; और इतनी उमर के आदमी का बहादुरी के साथ लड़ाई में मारा जाना असंभव है-

3. महाराणा कुंभ से 100 वर्ष पीछे मीरांबाई के चचेरे भाई जलमल्ल का मारा जाना लिखा है; इस हालत में जयमल्ल की बहन मीरांबाई कुंभा की राणी किस तरह समझी जावे?

4. मीरांबाई महाराणा विक्रमादित्य व उदयसिंह के समय तक जीती रही, और महाराणा ने उसको जो जो दुख दिया वह उसकी कविता में स्पष्ट है-

कर्नेल टॉड साहब ने धोखा खाया है, इसका सबब यह होगा कि महाराणा कुंभा ने चित्तौड़गढ़ पर कुंभश्यामजी के नाम से एक मंदिर बनाया था और उसके पास ही एक दूसरा मंदिर बना हुआ है, जो मीरांबाई के नाम से मशहूर है, पर न मालूम कि वह मंदिर

मीरांबाई का ही बनाया हुआ है या किसी औरत का शायद इन दोनों मंदिरों के पास पास होने से मीरांबाई महाराणा कुंभा की स्त्री मानी गई। परन्तु हमारे यहां, व मेड़तिया राठौड़ों की, व जोधपुर की तवारीखों में मीरांबाई को भोजराज की राणी लिखा है।'[4]

कविराजा के इन वर्णनों से मीरां के संबंध में अनेक महत्वपूर्ण जानकारियां प्राप्त होती है एवं हमें ज्ञात होता है कि मीरां सांगा के जन्मकाल में ही विधवा हो चुकी थी। कविराजा के विवरणों से मीरां के संबंध में उन भ्रमों का निवारण भी होता है जिनका निर्माण कर्नल टॉड के इतिहास ग्रंथ से हुआ था। कविराजा ने इस बात का सप्रमाण गंभीरता से खंडन किया कि मीरा कुंभा की पत्नी थी। साथ ही उन्होंने कुंवर भोज को मीरां का पति भी बता दिया। कविराजा के मीरां संबंधी विवरण अन्य किसी भी इतिहासकार एवं मीरां के आलोचक से अधिक विश्वसनीय माने जाएंगे। कविराजा को मेवाड़ के इतिहास की जो गहनतम जानकारियां थी, उस ऊंचाई पर आज तक कोई भी इतिहासकार पहुंच नहीं पाया है। कविराजा के विवरणों से हमें यह भी ज्ञात होता है कि मीरां रत्न सिंह की पुत्री थी न कि राव दूदा की। राव दूदा मीरां के दादा थे। मीरां के पिता खानवा की लड़ाई में मारे गए थे। कविराजा हमें यह महत्वपूर्ण जानकारी भी देते हैं कि मेड़ता व मारवाड़ की तवारिखों में मीरां का उल्लेख भोज की पत्नी के रूप में हुआ है। संभव है कविराजा ने उन्हें देखा हो किन्तु काफी सयास के बावजूद मारवाड़ अथवा मेड़ता से इस प्रकार का मीरां संबंधी कोई प्रामाणिक विवरण उपलब्ध नहीं हो पाया है। बहुत संभव है मीरां संबंधी मारवाड़ व मेड़ता की तवारिखों से प्राप्त ये विवरण आज भी कहीं गुमनामी के अंधेरे में पड़े हों।

कविराजा ने कुंभश्याम मंदिर के समीप स्थित मीरां मंदिर को मीरां के नाम पर मशहूर बताया है किंतु वे इस संबंध में यह तय नहीं कर पा रहे थे कि वह मीरां का ही बनाया हुआ था या किसी और के द्वारा। मीरां के परवर्ती काल में मेवाड़ का पराभव तीव्र गति से होता है अतः परवर्ती समय में किसी युवरानी के पास इतना धन कभी नहीं रहा कि वह मीरां मंदिर जैसा उत्कृष्ट शिल्प का नया मंदिर निर्मित करा सके। राजमहल में मीरां की स्थिति भी शक्तिशाली थी एवं नए महाराणा उससे कनिष्ठ थे अतः मीरां में इस प्रकार के मंदिर निर्माण की क्षमता थी परन्तु परवर्ती समय में कोई महारानी ऐसा नहीं कर

सकी। अत: पुष्ट प्रमाण के अभाव में कविराजा यह तय नहीं कर पा रहे थे कि मीरां मंदिर मीरां द्वारा निर्मित है अथवा नहीं।

अपने इतिहास ग्रंथ में कविराजा ने हाड़ा राठौड़ संघर्ष का संकेत भी कर दिया है जिसकी पुष्टि निम्न उद्धरण से हो जाती है-

''एक दिन महाराणी हाड़ी ने महारणा से प्रार्थना की कि मेरे दोनों बेटों के लिए आप के हाथ से जागीर न मिलेगी तो पीछे रत्न सिंह इनको दुख देंगे। तब महाराणा सांगा ने कहा कि जो जागीर तुम मांगों वही तुम्हारें बेटों के लिए दी जावे। इस पर राणी ने रणथंभोर के वास्ते अर्ज की और वह महाराणा को मंजूर हुई। फिर दुबारा महाराणी हाड़ी ने कहा कि यदि आपने मेरी विनती स्वीकार की, तो विक्रमादित्य, मेरे भाई सूर्यमल्ल को सौंपा जाय कि वह इनकी सम्हाल रक्खे। महाराणा ने राणी की प्रार्थना के अनुसार आज्ञा दी; परन्तु सूर्यमल्ल ने कहा कि मुझे इस आज्ञा के पूरा करने में कदाचित् आपके अनन्तर रत्नसिंह से सामना करना न पड़े, इसलिए रत्नसिंह की भी इसमें सलाह लेनी जरूर है। तब महाराणा सांगा ने महाराजकुमार रत्नसिंह को बुलाकर इस विषय में पूछा; रत्नसिंह ने ऊपरी दिल से सूर्यमल्ल को अनुमति दी। इस तरह पक्का वंदोबस्त होने पर सूर्यमल्ल ने भी महाराणा की आज्ञा का पालन करना स्वीकार किया।''[15]

उल्लेखनीय है कि कुंवर रत्नसिंह राठौड़ों के भाञ्जे थे अत: राठौड़ों का पूर्ण समर्थन उन्हें प्राप्त था। रत्न सिंह का विरोध भी हाड़ाओं से था। अत: मीरां को वास्तविक प्रताड़ना केवल उच्छृंखल महाराणा विक्रमादित्य से ही मिली रत्नसिंह एवं मीरां के संबंध परस्पर अत्यंत मधुर थे एवं बतौर देवर रत्न सिंह मीरां का बहुत सम्मान करता था।

मीरां का तीसरा महत्वपूर्ण उल्लेख पं. गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने अपने इतिहास ग्रंथ 'उदयपुर राज्य का इतिहास' में किया है। मीरां संबंधी ओझा जी का वर्णन प्राय: कविराजा श्यामलदास के वर्णन की ही पुनरावृत्ति है। यहां तक कि कुछ पंक्तियां तो 'उदयपुर राज्य का इतिहास' में 'वीर विनोद' से ज्यों कि त्यों ग्रहण कर ली गई हैं जैसा कि 'उदयपुर राज्य का इतिहास' से मीरां संबंधी लिए गए निम्न उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है-

''महाराणा सांगा का ज्येष्ठ कुंवर भोजराज था, जिसका विवाह मेड़ते के राव वीरमदेव के छोटे भाई रत्नसिंह की पुत्री मीरांबाई के साथ वि.सं. 1573 (ई.स. 1516) में हुआ था। परन्तु कुछ वर्षों बाद महाराणा की जीवित दशा में ही भोजराज का देहान्त हो गया, जिससे उसका छोटा भाई रत्नसिंह, युवराज हुआ। कर्नल टॉड ने जनश्रुति के अनुसार मीरांबाई को महाराणा कुंभा की राणी लिखा है और उसी आधार पर भिन्न-भिन्न भाषाओं के ग्रंथों में भी वैसा ही लिखा जाने से लोग उसको महाराणा कुम्भा की राणी मानने लग गए हैं, जो भ्रम ही है।''

हिन्दुस्तान में बिरला ही ऐसा गांव होगा, जहां भगवद्रक्त हिन्दू स्त्रियां या पुरुष मीरांबाई के नाम से परिचित न हो और बिरला ही ऐसा मंदिर होगा, जहां उसके बनाए हुए, भजन न गाये जाते हो। मीरांबाई मेड़ते के राठौड़ राव दूदा के चतुर्थ पुत्र रत्नसिंह की, जिसको दूदा के निर्वाह के लिए 12 गांव दे रखे थे, इकलौती पुत्री थी। उसका जन्म कुड़की गांव में वि.सं 1555 (ई.स. 1498) के आसपास होना माना जाता है। बाल्यावस्था में ही उसकी माता का देहान्त हो गया, जिससे राव दूदा ने उसे अपने पास बुलवा लिया ओर वहीं उसका पालप-पोषण हुआ। वि.सं. 1572 (ई.सं. 1515) में राव दूदा के देहान्त होने पर वीरमदेव मेंड़ते का स्वामी हुआ। गद्दी पर बैठने के दूसरे साल उसने उसका विवाह महाराणा सांगा के कुंवर भोजराज के साथ कर दिया। विवाह के कुछ वर्षों बाद युवराज भोजराज का देहान्त हो गया। यह घटना किस संवत् में हुई, यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं हुआ, तो भी संभव है कि यह वि.सं. 1575 (ई.सं. 1518) और 1580 9(ई.सं. 1523) के बीच किसी समय हुई हो।

मीरांबाई बचपन से ही भगवतभक्ति में रूचि रखती थी, इसलिए वह इस शोकप्रद समय में भी भक्ति में ही लगी रही। यह भक्ति उसके पितृकुल में पीढ़ियों से चली आती थी। दूदा, वीरमदेव और जयमल सभी परम वैष्णव थे। वि.सं. 1584 (ई.सं0. 1527) में उसका पिता रत्नसिंह, महाराणा सांगा और बाबर की लड़ाई में मारा गया। महाराणा सांगा की मृत्यु के बाद रत्नसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ और उसके भी वि.सं. 1588 (ई.सं. 1531) में मरने पर विक्रमादित्य मेवाड़ की गद्दी पर बैठा। इस समय से पूर्व ही मीरांबाई की अपूर्व भक्ति और भावपूर्ण भजनों की ख्याति दूर-दूर तक फैल गई थी और

सुदूर स्थानों में साधु संत उससे मिलने आया करते थे। इसी कारण विक्रमादित्य उससे अप्रसन्न रहता और उसको तरह तरह की तकलीफें दिया करता था। ऐसा प्रसिद्ध है कि उसने उस (मीरांबाई) को मरवाने के लिए विष देने आदि के प्रयोग भी दिया, परन्तु वे निष्फल ही हुए। मीरांबाई की ऐसी स्थिति जानकर उसको वीरमदेव ने मेड़ते बुला लिया। वहां भी उसके दर्शनार्थी साधु-संतों की भीड़ लगी रहती थी। जब जोधपुर के राव मालदेव ने वीरमदेव से मेड़ता छीन लिया, तब मीरांबाई तीर्थयात्रा को चली गई और द्वारकापुरी में जाकर रहने लगी, जहां वि.सं. 1603 (ई.सं. 1546) में उसका देहान्त हुआ।

भक्तशिरोमणि मीरांबाई के बनाए हुए ईश्वर भक्ति के सैकड़ों भजन भारत भर में प्रसिद्ध हैं और जगह-जगह गाए जाते हैं। मीरांबाई का मलार राग तो बहुत ही प्रसिद्ध हैं। उसकी कविता भक्तिरस पूर्ण, सरल और सरस है। उसने राग-गोविन्द नामक कविता का एक ग्रंथ भी बनाया था। मीरांबाई के संबंध की कई तरह की बातें पीछे से प्रसिद्ध हो गई हैं, जिनमें ऐतिहासिक तत्व नहीं हैं।

कुंवर भोजराज की मृत्यु के बाद रत्नसिंह युवराज हुआ, जिसके छोटे भाई उदयसिंह (ओझा जी के 'उदयपुर राज्य के इतिहास' से ही उद्धृत) और विक्रमादित्य थे। उनको जागीर मिलने के संबंध में मुहणोत नैणासी ने लिखा है- "राणा सांगा का एक विवाह हाड़ा राव नर्बद की पुत्री करमेती (कर्मवती) से भी हुआ था, जिससे विक्रमादित्य और उदयसिंह उत्पन्न हुए। राणा का इस राणी पर विशेष प्रेम था। एक दिन करमेती ने राणा से निवेदन किया कि आप चिरंजीवी हों, इसलिए आपके सामने ही इनकी जागीर नियत हो जाय तो अच्छा है। राणा ने पूछा, तुम क्या चाहती हो? इसके उत्तर में उसने कहा कि रत्नसिंह की सम्मति लेकर रणथंभोर जैसी कोई जागीर इनको दे दी जाय और हाड़ा सूरजमल जैसे राजपूत को इनका संरक्षक बनाया जाय। राणा ने इसे स्वीकार कर दूसरे दिन रत्नसिंह से कहा कि विक्रमादित्य और उदयसिंह तुम्हारे छोटे भाई हैं, जिनको कोई ठिकाना देना चाहिए। महा शक्तिशाली सांगा से रत्नसिंह ने यही कहा कि आपकी जो इच्छा हो, वही जागीर दीजिए। इस पर राणा ने उनको रणथंभोर का इलाका जागीर में देने की बात कही, तो रत्नसिंह ने कहा - 'बहुत अच्छा'। फिर जब विक्रमादित्य और उदयसिंह को रणथंभोर का मुजरा करने की आज्ञा हुई, तो इन्होंने मुजरा किया। उस समय बूंदी का हाड़ा

सूरजमल भी दरबार में हाजिर था। राणा ने उसको कहा कि हम इन्हें रणथंभोर देकर तुम्हारी संरक्षा में रखते है। सूरजमल ने निवेदन किया कि मुझे इस बात से क्या मतलब है, मैं तो चित्तौड़ के स्वामी का सेवक हूं। तब राणा ने कहा - 'ये दोनों बालक तुम्हारे भानजे हैं, बूंदी के रणथंभोर निकट भी है और हमें तुम्हारे पर विश्वास है, इसीलिए इनका हाथ तुम्हें पकड़वाते हैं।' सूरजमल ने जवाब दिया कि आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, परन्तु आपके पीछे रत्नसिंह मुझे मारने को तैयार होंगे, इसलिए आपके कहने से मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकता; यदि रत्नसिंह ऐसा कह दें, तो बात दूसरी है। राणा ने रत्नसिंह की ओर देखा, तो उसने सूरजमल से कहा कि जैसा महाराणा फरमाते हैं वैसा करो; ये मेरे भाई और आप भी हमारे संबंधी हैं, मैं इसमें बुरा नहीं मानता। तब सूरजमल ने राणा की यह आज्ञा मान ली और साथ जाकर रणथंभोर में विक्रमादित्य और उदयसिंह का अधिकार करा दिया।''

नीचे संदर्भ इस प्रकार दिए गए है- ''मीरांबाई 'मेड़तणी' कहलाती है, जिसका आशय मेड़तिया राजवंश की कन्या है। जोधपुर के राव जोधा का एक पुत्र दूदा, जिसका जन्म वि.सं. 1497 (ना.प्र.प. भाग 1, पृष्ट 114) में हुआ था, वि.सं. 1518 (ई.सं. 1461) या उससे पीछे मेड़ते का स्वामी बना। उसी से राठौड़ों की मेड़तिया शाखा चली। दूदा का ज्येष्ठ पुत्र वीरमदेव, जिसका जन्म वि.सं 1534 (ई.स. 1477) में हुआ था। (वहीं पृ. 114), उस (दूदा) के पीछे मेड़ते का स्वामी बना। उसके छोटे भाई रत्नसिंह की पुत्री मीरांबाई थी। महाराणा कुंभा वि.सं. 1525 (ई.स. 1468) में मारा गया, जिसके 9 वर्ष बाद मीरांबाई के पिता के बड़े भाई वीरमदेव का जन्म हुआ था। ऐसी दशा में मीरांबाई का महाराणा कुंभ की राणी होना सर्वथा असंभव है।

(1) हरविलास सारड़ा, महाराणा सांगा; पृ. 66

(1) हरविलास सारड़ा, महाराणा सांगा, पृ. 66। मुंशी देवीप्रसाद; मीरांबाई का जीवनचरित्र, पृ. 280। चतुरकुलचरित्र, भाग 1, पृ. 80

(1) मुंहणोत नैणसी की ख्यात, पत्र 25''[6]

पं. गौरीशंकर हीराचंद ओझा कविराजा श्यामदास की शिष्य परम्परा में आते थे एवं मेवाड़ व राजपूताने के इतिहास के संबंध में इनकी गहरी समझ थी। ओझा जी एवं मीरां के प्रथम आलोचक मुंशी देवी प्रसाद निकट संपर्क में थे एवं मुंशीजी द्वारा लिखित

'मीरांबाई का जीवन चरित्र' के लिए ओझा जी ने महत्वपूर्ण सूचनाएं एवं जानकारियां मुंशीजी को उपलब्ध कराई थी।[7] वर्तमान समय में गौरीशंकर हीराचंद ओझा का समस्त इतिहास लेखन एवं उनकी पांडुलिपियाँ प्रताप शोध प्रतिष्ठान, उदयपुर में सुरक्षित हैं।

कर्नल टॉड के बाद मीरां पर कलम चलाने वाले दूसरे उल्लेखनीय अंग्रेज इतिहासकार ऐलेक्जेन्डर किन्सोक फॉर्बस है, जो ईस्ट इंडिया कंपनी के ऑनरेबल सिविल सर्वेन्ट थे। उन्होंने 'रासमाला, हिन्दु एनल्स ऑफ दी प्रॉविंस ऑफ गुजरात इन वेस्टर्न इंडिया' नामक ग्रंथ लिखा था जिसमें उन्होंने कर्नल टॉड का ही अनुसरण करते हुए मीरां को कुंभा की पत्नी बताया है। फार्बस मूलतः पुरातत्ववेत्ता थे।

जैसा कि कविराजा ने संकेत किया था कि उन्हें मारवाड़ व मेवाड़ की तवारिखों में मीरां संबंधी उल्लेख मिले थे किन्तु कोई महत्वपूर्ण सूचना अथवा जानकारी किसी भी इतिहास ग्रंथ से प्राप्त नहीं हो पायी है। न ही उन ग्रंथों की जानकारी हो पायी है जिनसे मीरां संबंधी किसी घटना के वर्णन अथवा उसके जीवन की जानकारी मिलती हो। सुनने में आया है कि मुंहणोत नैणसी ने अपनी ख्यात में मीरां के संबंध में केवल इतना कहा है कि ''मीरां नाम की कोई स्त्री हुई थी ऐसा सुनने में आया है।'' जब कि डॉ. प्रभात का मानना है कि नैणसी ने अपनी ख्यात में मीरां का कहीं कोई उल्लेख नहीं किया है।[8] मुहणोत नैणसी ने 'मारवाड़ परगना री विगत' नाम का ग्रंथ भी लिखा है जिसमें मेड़ता परगने का हाल भी दिया गया है। इस प्रकार परवर्ती समय में मेड़तियों के पराभव के साथ ही उनका पूर्ण अधिग्रहण मारवाड़ राज्य द्वारा किया जा चुका था। ऐसी स्थिति में मेड़ता एवं पूर्ववर्ती स्वतंत्र मेड़ता राज्य का उल्लेख मारवाड़ के इतिहासकारों ने अधिक नहीं किया है, क्योंकि ऐसा करने पर मारवाड़ के महाराजा का सहज ही में उन्हें कोपभाजन बनना पड़ता। अतः मारवाड़ के ख्यातकारों एवं इतिहासकारों ने मेड़ता का जहां भी कोई उल्लेख किया है, वह मुख्य रूप से मारवाड़ के परगने के रूप में ही न कि स्वतंत्र राज्य के रूप में। ऐसी स्थिति मे इतिहासकारों द्वारा जो इतिहास रचा गया उसमें मेड़ता की गौरवगाथाओं को काफी हद तक दबा दिया गया। इस न्यूनता के बाद भी 'मुंदियाड़ री ख्यात' नामक एक ख्यात उपलब्ध होती है जिससे मेड़तियों के बारे में महत्वपूर्ण जानकारियां प्राप्त होती है। मीरां के संबंध में विश्वेश्वरनाथ रेउ के 'मारवाड़ का इतिहास' जैसे ग्रंथों का महत्व केवल इस अर्थ

में है कि इनसे मीरां युगीन समाज व परिवेश के बारे में अनेक विश्वसनीय सामग्रियां प्राप्त होती हैं। अंत में ठाकुर गोपाल सिंह के 'जयमल वंश प्रकाश' का उल्लेख करना भी प्रासंगिक होगा जो मीरां के चचेरे भाई जयमल के व्यक्तिव पर केन्द्रित है। इस ग्रंथ में मीरां पर एक स्वतंत्र अध्याय भी सम्मिलित किया गया है। इन ग्रंथों के अलावा 'बाबरनामा' एवं 'अकबरनामा' जैसे ग्रंथों से भी मीरां युगीन समाज एवं राजनीति की जानकारी प्राप्त होती है।

मीरां के प्रथम व्यवस्थित आलोचक मुंशी देवीप्रसाद मूलतः इतिहासकार थे। इन्होंने 'मीराबाई का जीवन चरित्र' नाम से मीरां पर लगभग 30 पृष्ठों की एक पुस्तिका प्रकाशित की थी जिसका प्रथम संस्करण संवत् 1955 में प्रकाशित हुआ था। मुंशीजी की 30 पृष्ठों की यह छोठी सी पुस्तिका इतनी अधिक लोकप्रिय रही कि पुस्तिका प्रकाशन के कुछ ही दिनों के अंदर इसकी सारी प्रतियां समाप्त हो गई।[9] दुर्भाग्यवश इसका अगला संस्करण कई वर्षों पश्चात् संवत् 2011 में बंगीय हिन्दी परिषद, कलकत्ता से प्रकाशित किया गया जो आलोचकों की मीरां विषयक उदासीनता, प्रकट करने के लिए पर्याप्त है। इस नवीन संस्करण के संपादक ललिता प्रसाद सुकुल जी थे। उन्होंने पुस्तक का कलेवर बढ़ाने के लिए उसमें कुछ अतिरिक्त परिशिष्ट जोड़े, तब कहीं जाकर यह पुस्तक 70-80 पृष्ठों तक विस्तृत हो सकी। पुस्तिका में मुंशीजी के निष्कर्ष उनके महत्वपूर्ण ऐतिहासिक ज्ञान से अनुप्राणित थे जिसमें मीरां संबंधी मुंशीजी का वर्णन मेवाड़ के इतिहासकारों द्वारा प्रदान की गई सूचनाओं पर आधारित था। कविराजा श्यामलदास एवं गौरीशंकर हीराचंद ओझा के समान ही उन्होंने कर्नल टॉड के निष्कर्षों का खंडन किया एवं कहा कि मीरां का जन्म स्थल कुड़की है। 'मुंशीजी का मीरांबाई का जीवन चरित्र' इस अर्थ में विशिष्ट था कि यह पुस्तिका पूर्णरूपेण मीरां को केन्द्र में रखकर लिखी गई। मुंशीजी ने मीरां का जीवन चरित्र प्रस्तुत करने हेतु ऐतिहासिक सामग्री के साथ-साथ प्रचलित किवदंतियों का भी भरपूर उपयोग किया एवं उन पर आलोचनात्मक दृष्टिकोण अपनाया। मीरां एवं उनके जीवन से संबंधित स्रोत सामग्री के अभाव में उन्होंने आलोचनात्मक विषय को विस्तृत करके मेड़तियों तथा सिसोदियों के इतिहास तक विस्तारित फलक में कलम चलाई। यथा 'मीराबाई का जीवन चरित्र' के कुछ अध्याय इस प्रकार है- 'मेड़ते और मेडतिये राठौड़ों का कुछ हाल',

'मीरांबाई की कौम और ससुराल' इत्यादि। उक्त पुस्तिका में मुंशीजी ने मीरां को एक लोकप्रिय भक्त कवयत्री के रूप में प्रस्तुत किया है, यद्यपि मीरां संबंधी इस पुस्तिका में ऐतिहासिक विवरण एवं मीरां से संबंधित ऐतिहासिक घटनाक्रम एवं उन घटनाओं का मीरां के जीवन पर पड़े प्रभावों की चर्चा ही अधिक की गई है। संभवत: स्त्री होने के कारण युगीन मानसिकता के अनुरूप मंशीजी यह मानने के लिए तैयार नहीं थे कि मीरां कोई राजनीतिक व्यक्तित्व भी हो सकती है। मुंशीजी की यह पुस्तक छोटी होते हुए भी अत्यंत व्यवस्थित रूप से मीरां से संबंधित घटनाओं का क्रमबद्ध विवरण प्रस्तुत करती है। मीरां को जहर दिए जाने की घटना का वर्णन एक स्वतंत्र अध्याय में किया गया है।

हिन्दी साहित्य के तीन आरंभिक इतिहासकारों अर्थात् फ्रांसीसी विद्वान गार्सा द तासी, शिवसिंह सेंगर एवं जार्ज ग्रियर्सन ने अपने इतिहास ग्रंथों में मीरां का उल्लेख किया है। उनके उल्लेख का मूल आधार नाभादास के ग्रंथ 'भक्तमाल' में मीरां संबंधी पद एवं परवर्ती समय की उसकी टीकाएं थी। जब ये तीनों ही इतिहासकार साहित्येतिहास के ग्रंथों की रचना कर रहे थे उस समय राजस्थान के इतिहास की जानकारी हेतु कर्नल टॉड के इतिहास ग्रंथ 'एनल्स एण्ड एन्टीक्विाटी ऑफ राजस्थान' को ही आधार ग्रंथ के रूप में प्रयोग करने की परिपाटी चल पड़ी थी। अत: साहित्येतिहास के इन विद्वान इतिहासकारों का मीरां संबंधी वर्णन भी नाभादास एवं टॉड की कृतियों से प्रेरित था।

मीरां के संबंध में इन साहित्येतिहासकारों का महत्व इस बात में है कि इन्होंने मीरां को अपने साहित्येतिहास में जगह प्रदान की जिसमें पुरुष भक्त कवियों के मध्य मीरां, अपने पूर्ण चमत्कारिक व्यक्तिव के साथ मौजूद है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास पुरुष आचार्य रामचन्द्र शुक्ल संवत् 1986 तक 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' लिख चुके थे। तुलसी उनके प्रिय कवि थे। जहां तक मीरां का प्रश्न है शुक्ल जी मीरां को सगुणा मानते थे। शुक्ल जी ने अपने 'इतिहास' में मीरां का जो वर्णन दिया है। वह इस प्रकार है-

मीरांबाई: ये मेड़तिया के राठौर रत्नसिंह की पुत्री, राव दूदाजी की पौत्री और जोधपुर को बसानेवाले प्रसिद्ध राव जोधाजी की प्रपौत्री थीं। इनका जन्म संवत् 1573 में चोकड़ी नाम के एक गांव में हुआ था और विवाह उदयपुर के महाराणा कुमार

भोजराजजी के साथ हुआ था। ये आरंभ से ही कृष्णभक्ति में लीन रहा करती थी। विवाह के उपरांत थोड़े दिनों में इनके पति का परलोकवास हो गया। ये प्राय: मंदिर में जाकर उपस्थित भक्तों और संतों के बीच श्रीकृष्ण भगवान की मूर्ति के सामने आनंदमग्न होकर नाचती और गाती थीं। कहते हैं कि इनके इस राजकुलविरूद्ध आचरण से इनके स्वजन लोकनिंदा के भय से रूष्ट रहा करते थे। यहां तक कहा जाता है कि इन्हें कई बार विष देने का प्रयत्न किया गया, पर भगवत कृपा से विष का कोई प्रभाव इनपर न हुआ। घरवालों के व्यवहार से खिन्न होकर ये द्वारका और वृंदावन के मंदिरों में घूम घूमकर भजन सुनाया करती थीं। जहां जाती वहां इनका देवियों का सा सम्मान होता। ऐसा प्रसिद्ध है कि घरवालों से तंग आकर इन्होंने गोस्वामी तुलसीदासजी को पद लिखकर भेजा था। ...

पर मीरांबाई की मृत्यु द्वारका में संवत् 1603 में हो चुकी थी। अत: यह जनश्रुति किसी भी कल्पना के आधार पर ही चल पड़ी। ...

मीरांबाई की उपासना 'माधुर्यभाव' की थी अर्थात् वे अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण की भावना प्रियतम या पति के रूप में करती थीं। पहले यह कहा जा चुका है कि इस भाव की उपासना में रहस्य का समावेश अनिवार्य है। इसी ढंग की उपासना का प्रचार सूफी भी कर रहे थे अत: उनका संस्कार भी इन पर अवश्य कुछ पड़ा। जब लोग इन्हें खुले मैदान मंदिरों में पुरुषों के सामने जाने से मना करते तब वे कहती कि कृष्ण के अतिरिक्त और पुरुष है कौन जिसके सामने लज्जा करूं? मीराबाई का नाम भारत के प्रधान भक्तों में है और इनका गुणगान नाभाजी, ध्रुवदास, व्यास जी, मलूकदास आदि सब भक्तों ने किया है। इनके पद कुछ तो राजस्थानी मिश्रित भाषा में हैं और कुछ विशुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा में। पर सबमें प्रेम की तल्लीनता समान रूप में पाई जाती है। इनके बनाए चार ग्रंथ कहे जाते हैं- नरसी जी का मायरा, गीतगोविन्द टीका, राग गोविन्द, राग सोरठ के पद।''[10]

शुक्ल जी के वर्णन से ऐसा लगता है कि मीरां के बारे वे कुछ खास नहीं जानते थे जैसा कि उन्होंने लिखा है मीरां का विवाह उदयपुर के महाराणा कुमार भोजराजजी के साथ हुआ था। प्रथम तो यह कि कुंवर कभी महाराणा नहीं होता दूसरे भोज के समय तक उदयुपर नगर की स्थापना ही नहीं हुई थी। उदयपुर की स्थापना मीरां के सबसे छोटे देवर उदयसिंह ने मीरां के चित्तौड़ त्यागने के कई वर्षों पश्चात् की थी परन्तु आचार्य शुक्ल

ने मीरां को चित्तौड़ नहीं वरन् उदयपुर के कुंवर की पत्नी बताया। आचार्य शुक्ल ने मीरां के गांव का नाम तक गलत उद्घृत किया है, तथा कुड़की को चौकड़ी नाम से संबोधित किया। शुक्ल जी ने मीरां का जो कुछ संक्षेप में विवरण दिया उससे अनुमान होता है कि वे मीरां की भक्ति तुलसी की भक्ति की तरह श्रेष्ठ नहीं मानते थे तथा मीरां के विद्रोह एवं संघर्ष को गृहक्लेश से ज्यादा स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। आगे वे मीरां पर रहस्यवाद का आरोपण करते हुए उन्हें सूफी संतों से प्रभावित बताते हैं। उन्होंने मीरां द्वारा कथित रूप में प्रणीत चार ग्रंथों का हवाला भी दिया है। शुक्ल जी के वर्णन से ऐसा लगता है कि वे मीरां के पति के संबंध में चलने वाली बहस से परिचित थे। इसीलिए उन्होंने मीरां को भोज की पत्नी बताया न कि महाराणा कुंभा की पत्नी। उल्लेखनीय है कि शुक्ल जी कर्नल टॉड के 'एनल्स' का भली प्रकार अध्ययन कर चुके थे एवं राजस्थान के वीरकाव्यों का वर्णन करते समय उन पर टॉड की इस पुस्तक का गहरा प्रभाव विद्यमान था। शुक्ल जी को बंगीय हिन्दी परिषद की मदद से मीरां से संबंधित विभिन्न पदों को देखने का मौका भी मिला था जिसे भ्रमवश उन्होंने मीरां द्वारा रचित ही मान लिया एवं अपने इतिहास में इनकी चर्चा करते हुए निश्चयात्मक लहजे में कह डाला कि इन पर राजस्थानी और ब्रज का प्रभाव है। वास्तविकता यह थी कि वे पद लोक द्वारा रचे गए थे फलतः लोकभाषाओं का प्रभाव उन पर दिखाई देता था। इन पदों की प्राप्ति के आधार पर अंततः वे इस निष्कर्ष पर भी पहुंच गए कि मीरां ने कुल चार ग्रंथों की भी रचना की थी। ध्यान रहे कि कबीर एवं मीरां लोक कवि थे जिन्होंने स्वयं उस प्रकार के पदो, भजनों अथवा ग्रंथों की रचना नहीं की जिस प्रकार तुलसी ने रामचरित मानस कवितावली, गीतावली आदि ग्रंथों की रचना की थी। मीरां व कबीर के पद लोक में ही रचे गए एवं उन्हें वही प्रसिद्धि मिली क्यों कि मूलतः कबीर व मीरां लोक की ही निधि थे शास्त्रनिधि नहीं।

मुंशीजी के 'मीरांबाई का जीवन चरित्र' के संपादित संस्करण के प्रकाशन के पश्चात् बंगीय हिन्दी परिषद से ही मीरां पर लगभग 300 पृष्ठों का एक संपादित ग्रंथ प्रकाशित किया गया। जिसका नाम 'मीरां स्मृति ग्रंथ' रखा गया। इसके संपादक मंडल में एक महिला कमला देवी गर्ग के अलावा 5 अन्य व्यक्ति थे जिनमें से एक ललिता प्रसाद

सुकुल भी थे।[11] संभवत: यह ग्रंथ शुक्ल के इतिहास के प्रकाशन से पूर्व ही प्रकाशित हो गया था। इसी ग्रंथ के प्रभाव स्वरूप जिसमें मीरां पर रहस्यवाद का आरोपण किया गया है शुक्लजी ने कबीर की भांति मीरां को भी रहस्यवादी कवयत्री घोषित कर दिया। मीरां स्मृति ग्रंथ में कुल 19 लेखकों के आलेख सम्मिलित थे जिनमें प्रो. शिवाधर पाण्डेय का एक आलेख भी सम्मिलित था जिसका शीर्षक था 'मिस्टिक, लिपिस्टिक और मीरां'। इसी ग्रंथ की भूमिका में रामप्रसाद त्रिपाठी ने मीरां को निर्गुण भक्तों से अलगाते हुए सगुण भक्तिधारा में रखा है। वे लिखते हैं-

''मीरां का संपर्क निर्गुणवादी संतों के साथ भी संभवत: हुआ होगा। किन्तु उनके उपास्यदेव तथा उनकी उपासना तथा साधना से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उन पर निर्गुण विचार-धारा का प्रभाव नगण्य था। रैदास की शिष्या हो जाने की अनुश्रुति भी कपोल कल्पित सी जान पड़ती है। त्याग तथा विचार की वृत्ति निर्गुण उपासकों की विशेषता नहीं। निर्गुण संप्रदाय में भी त्यागियों और विरक्तों की कमी नहीं।''[12]

संभव है इन्हीं निष्कर्षों के आधार पर शुक्ल जी ने मीरां की सगुण भक्ति को कृष्ण भक्ति शाखा के अंतर्गत वगीकृत किया हो। इस ग्रंथ के अंत में मैथिलीशरण गुप्त की पंक्तियां उद्घृत की गई हैं जो कि मीरां को आदर्श भक्तिमती हिन्दू स्त्री के रूप में चित्रित करती है। वस्तुत: 'मीरां स्मृति ग्रंथ' के माध्यम से मीरां की एक ऐसी छवि निर्मित करने का प्रयास किया गया जो उस युग के मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियो द्वारा निर्मित आदर्श भारतीय नारी के अनुरूप थी। इस ग्रंथ में मीरां के वेदना तत्व की चर्चा है उन्हें करूणा से युक्त बताया गया है तथा उनका वर्णन एक ऐसी स्त्री के रूप में किया गया है जो घर के पुरूषों तथा कुटुम्बियों द्वारा दिए गए कष्टों को लगातार धैर्यपूर्वक सहती रही। पूरे ग्रंथ में मीरां के विद्रोही चरित्र एवं संघर्ष की कहीं कोई चर्चा नहीं है। इस ग्रंथ के द्वारा उस समय के बौद्धिक समाज में मीरां की जो छवि निर्मित हुई वह एक कष्टसहिष्णु भक्त की छवि थी जिसके काव्य में रहस्यात्मकता एवं वेदना का तत्व था लगभग उसी तरह जिस तरह की वेदना व रहस्यात्मकता छायावादी रोमेन्टिक कवियों में हुआ करती थी। मीरां के व्यक्तित्व में समर्पण ज्यादा एवं संघर्ष कम दिखाया गया है।

जिन लोगों ने मीरां के अध्ययन को अपना जीवन प्रदान कर दिया, उन लोगों में पुरोहित हरिनारायण जी का नाम उल्लेखनीय है। कहा जाता है कि उन्होंने मीरां के जीवन से संबंधित स्रोतों एवं उनके नाम पर प्रचलित पदों को एकत्र कर एक पोथा तैयार किया था। तमाम प्रयासों के बावजूद केवल राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी द्वारा प्रकाशित उनके पत्रों का संग्रह ही प्राप्त हो सका है। अब मीरां संबंधी वह पोथा कहां है कुछ अनुमान नहीं लगाया जा सकता। पुरोहित जी का दिनांक 1-2-40 में लिखा गया उनका एक पत्र यहां उद्घृत किया जा रहा है जिनसे हमें पता चलता है कि उस समय तक मीरां के जीवन से संबंधित प्रमुख रूप से कौन-कौन सी आलोचनात्मक पुस्तिकाएं प्रकाशित हो चुकी थीं जिसका अध्ययन पुरोहित जी ने किया था। अपने दिनांक 1.2.40 ई. के पत्र में पुरोहितजी ने रूपाहेली के ठाकुर साहब चतुरसिंह जी को लिखा। ''श्रीमती मीरां बाई के पदों का संग्रह मेरे पास कई वर्षों से हो रहा है। वैसे तो घर में मेरी दादीजी एवं बहिन मोतीबाई जी के किए गए संग्रह के पद थे परन्तु मैं जब जनानी डयौढी में हाकिम रहा था तब से कई वर्षों तक संग्रह बढ़ता रहा। तत्संबंधी ग्रंथ भी 50 से ऊपर हो गए (अंग्रेजी, संस्कृत, हिन्दी, गुजराती, मारवाड़ी, बंगला, पंजाबी, उर्दू) और 500 के लगभग पद भी हो गए। कई हस्तलिखित 'मीरां-लीला' इत्यादि की भी प्रतियां संगृहीत हुई। मेरी अल्प बुद्धि में इतना विस्तृत संग्रह एवं अनुसंधान शायद ही कहीं हिन्दुस्तान से हुआ हो। जीवन चरित्र की कई गुत्थियां सुलझाने की पूर्ण चेष्टा की गई है। पद श्रीमती (मीरांबाई) जी के असल हैं या नहीं, इसका विचार भी किया गया है। पदों की प्रकरणों में बांधा गया है, जैसे प्रेम-भक्ति-विरह-उत्सुकता-उपालम्भ-संवाद-वैराग्य इत्यादि और अकारदिक्रम की सूची भी रखी गई है। इस संग्रह के अगाड़ी मीरांजी के पद और भी प्राप्त होते रहेंगे परन्तु यह संग्रह रूपी स्तम्भ संत साहित्य रूपी प्रदेश में ऐसा खड़ हो जाएगा कि अवशिष्ट पदादिक कालान्तर में आप ही इसके आसपास आ जावेंगे। और वह मारवाड़ या मेवाड़ का बूझ-बुझक्कड़ (आधार) ग्रंथ गिना जाएगा।'' आगे अपने कार्य का परिचय देते हुए पुरोहितजी ने उसी पत्र में लिखा है- 'मैंने अपने अनुसंधान में बहुत से विद्वानों को प्रश्नादित भेज कर लिखा ... परन्तु उनमें एक तो बदनोर ठाकुर गोपालसिहजी तथा ओझा गौरीशंकरजी का और एक आपका उत्तर ही संतोषजनक रहे। देवीप्रसादजी की पुस्तक तो मेरे पास

गहलोत जगदीशसिंहजी के पास से बहुत पहिले आ चुकी थी। वही प्रधान पथ प्रदर्शक रही। फिर 'जयमलवंश प्रकाश', ओझा जी का 'उदयपुर का इतिहास', नरोत्तमदासजी की 'मीरां मंदाकिनी' मंजुदेवी की 'मीरां पदावली' इत्यादि संग्रह में आ गए परन्तु इन सबसे पहिले स्वर्गीय बाबू बालेश्वर, प्रसादजी बेल्वेडियर प्रेस के स्वामी द्वारा संगृहीत 'मीरां पदावली' तथा 'वृहद्रागरत्नावली' आदि पुस्तकों से बहुत काम लिया गया। 150 वर्ष प्राचीन 'मीरां लीला' की पोथियां मिली। भक्तवर बख्यावरसिंहजी खंगारोत रचित 'मीरां लीला' की पोथियां मिली। भक्तवर बख्तावरसिंहजी खंगाारोत रचित 'मीरां लीला' बहुत सुन्दर है। बाबू अनाथदास वसु मेरे पास तीन-चार दिन रहे थे। अनुसंधान और संग्रह हुआ; फिर वे विदेश चले गये। डां. पीताम्बरदत्तजी बड़थ्वाल, डां. मोहनलालजी लाहोर वाले और पं. मोहन लालजी, एम,ए, मेवाड़ वालों आदि के ग्रंथों से भी सहायता ली गई।

सबसे बड़ी बात दृढ़ प्रमाणों सहित यह प्राप्त हो गई कि मीरां बाई की एक पूज्य मूर्ति चित्तौड़गढ़ से आंबेर में आई और उसे प्रसिद्ध मंदिर जगत् शिरोमणीजी में महाराजा मानसिंहजी ने स्थापित की।''[13]

जिन विद्वानों ने मीरां के पदों को संग्रहित करके उनके प्रकाशन का महत्वपूर्ण कार्य किया उसमें नरोत्तम दास स्वामी की 'मीरा मुक्तावली' आचार्य परशुराम चतुर्वेदी की 'मीरांबाई की पदावली' तथा अली सरदार जाफरी की पुस्तक 'प्रेमवाणी मीरां' का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसी क्रम में मीरां के जीवन पर जो उपन्यास प्रकाशित हुआ है उसमें भी भगवतीशरण मिश्र के उपन्यास 'पीताम्बरा' का नाम लिया जा सकता है। विश्वनाथ त्रिपाठी जी ने 'मीरा का काव्य' नामक एक पुस्तक लिखी है किन्तु वह किसी नई बहस अथवा सूचनाओं को प्रदान करती हो, ऐसा नहीं लगता। पुस्तक में कुछ तो बड़ी-बड़ी तथ्यात्मक भूले भी है जैसे कि मीरां के ससुराल को मरूधरा बताना एवं मीरां को उदयपुर से संबंधित करना आदि।[14]

प्राय: ऐसा देखने में आया है कि क्षेत्रगत अजनबीयत एवं बहस के केन्द्र में न होने के कारण हिन्दी आलोचकों ने जो मुख्यत: गंगा के मैदानी क्षेत्रों से थे, मीरां की तरफ कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। कुछ हद तक तो उपेक्षा भी हुई। यही वजह है कि राजस्थान के प्रति अजनबीयत के चलते विद्वान आलोचकों ने या तो मीरां पर कलम ही

नहीं चलाई एवं अगर जहां कहीं कलम चलाई भी तो गलत तथ्यों को प्रस्तुत किया। इन आलोचकों में मीरां की आलोचिका पद्मावती 'शबनम' से लेकर आलोचना पुरुष आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तक का नाम लिया जा सकता है।

पद्मावती शबनम मीरां पर कार्य करने वाले महत्वपूर्ण आलोचकों में से एक है। उनकी पुस्तक 'मीरां, व्यक्तित्व और कृतित्व' का उपयोग आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने अपनी पुस्तक 'मीरांबाई की पदावली' में भी किया था। पद्मावती शबनम ने मीरां पर गंभीर अध्ययन किया था एवं अपने अध्ययन के निष्कर्षों को 'मीरां, एक अध्ययन' में प्रस्तुत किया किन्तु एक गंभीर त्रृटि उनसे यह हुई है कि उन्होंने मीरां के पदों को बतौर अंत:साक्ष्य उपयोग में ले लिया है जिनसे मीरां संबंधी उनकी आलोचना बहुत गंभीर रूप से प्रभावित हो गई है। उनकी उस पुस्तक से यहां एक उद्धरण दिया जा रहा हैं-

''मीरां के पदों में 'माइतणो मोसाल' की अभिव्यक्ति मिलती है। यह 'माइतणो मोसाल' क्या है? शायद ननिहाल या मौसी के घर का ही पर्यायवायी हो, शायद दो विभिन्न शब्द हों। अधिक संभव है दो ही शब्द हों, क्योंकि मारवाड़ी में 'मायत' एक शब्द है, जिसका अर्थ है मां बाप की तरह स्नेहमय अधिकार रखने वाले, पथ-प्रदर्शक बुजुर्ग। प्रचलित प्रथानुसार यह शब्द सभी निकट बुजुर्ग संबंधियों के लिए प्रयुक्त होता हैं इस शब्द का रूढ़ि वाचक अर्थ मात्र बुजुर्ग ही रह गया है। मीरां को समझाते हुए सास कहती है-

''लाजै पीहर सासरो, माइतणो मोसाल।
सबही लाजै मेड़तिया जी, थांसू बुरा कहे संसार।'।।

(वही पद 29)

स्पष्ट ही इस 'माइतणो मोसाल' का महत्व 'पीहर' या 'सासरो' के समकक्ष का ही है। हिन्दू स्त्री के जीवन में दो ही घर विशेष महत्वपूर्ण होते हैं। एक पीहर दूसरा ससुराल।''[15]

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा प्रकाशित आचार्य परशुराम चतुर्वेदी की पुस्तक 'मीरांबाई की पदावली' वैसे तो मूल रूप से मीरां के पदों का संग्रह है किन्तु बतौर आलोचना भी विद्यार्थियों के मध्य यह पुस्तक अत्यंत लोकप्रिय रही है। चतुर्वेदी जी की इस पुस्तक में मीरां के पदों का व्यवस्थित संग्रह है किन्तु उसकी एक न्यूनता पदों में शब्दों एवं

भाव संबंधी अनेक दोष पाए जाते हैं जिसके परिणाम स्वरूप मीरां के नाम पर संग्रहित किए गए ये पद मीरां की मूल भावना एवं अभिव्यक्ति से बहुत हद तक दूर हो गए हैं।

वियोगी हरि द्वारा संपादित 'मीरांबाई के सुबोध पद' सस्ता साहित्य मंडल ने केवल कुछ पृष्ठों की पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किए हैं। इस पुस्तक के आरंभ में वियोगी जी ने एक छोटी सी भूमिका भी लिखी है जिसकी विशेषता इस बात में है कि उन्होंने मीरां की कष्ट सहिष्णु छवि न प्रस्तुत करके,एक निडर स्त्री की छवि प्रस्तुत की है। वे लिखते हैं -

''कुल मर्यादा त्याग देने के कारण उनको बार-बार सताया गया और दण्ड भी दिया गया, परन्तु वे तो निडर थीं। अपने अनन्य व्रत को नहीं त्यागा। मेवाड़ को छोड़कर वृन्दावन चली गई और वहां श्री जीव गोस्वामी का उन्हें सत्संग लाभ मिला-

मीराबाई अंत में द्वारका चली गई। मेवाड़ और मेड़ता दोनों राज्यों ने उनको द्वारका से लौटा लाने का प्रयत्न किया, परन्तु वे नहीं लौंटी। रणछोड़जी के मंदिर में जाकर, कहते हैं, भगवान की मूर्ति में ही वे समा गई। उनका भगवान में तदाकार होने का समय सं. 1603 वि. माना गया है।''[16]

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी जी की 'मीरांबाई की पदावली' पाठकों के मध्य कितनी अधिक लोकप्रिय रही है इसका उदाहरण भी वियोगी जी की इसी भूमिका से मिल जाता है।

''मीरांबाई के पदों का संकलन और संपादन विद्वानों ने किया है। उनके जीवन पर और उनकी रचनाओं पर भी अनेक विद्वानों ने खासा प्रकाश डाला है। संत साहित्य के मर्मज्ञ आचार्य परशुराम चतुर्वेदी द्वारा संपादित 'मीरांबाई की पदावली' हमारी दृष्टि में सर्वोत्तम है। शब्दार्थों में हमने उक्त पदावली से कृतज्ञतापूर्वक सहायता ली है।''[17]

अंत में इतिहासकार गोपीनाथ शर्मा द्वारा लिखित 'भक्त मीरांबाई' नामक पुस्तिका का उल्लेख करना भी महत्वपूर्ण है। यद्यपि कुछ पृष्ठों की इस पुस्तिका में किसी श्रेष्ठ आलोचना के दर्शन नहीं होते किन्तु शर्मा जी के मीरां युग के संदर्भ में एवं मेवाड़ राजघराने को लेकर दिए गए इतिहास संबंधी वक्तव्य बहुत महत्वपूर्ण हैं। वस्तुतः प्रस्तुत पुस्तिका की बजाय शर्मा जी के ग्रंथ 'राजस्थान का इतिहास' में दिया गया मीरां संबंधी

वर्णन अधिक उपयोगी माना जाएगा भले ही यह वर्णन केवल पांच पृष्ठों तक ही सीमित है। यहां एक उद्धरण प्रस्तुत किया जा रहा है-

''राजपूत परिवार में, जिनकी स्त्रियां जौहर की प्रथा में गौरव अनुभव करती हैं और जिन्होंने अपने धर्म का आरूढ़ रहने का सिद्धांत बना रखा है, पैदा होकर मीरां ने दुनिया को यह बता दिया कि वह अपने विचारों पर डटी रहेंगीं और विपरीत फल होने की आशंका की कभी परवाह न करेगी। कृष्ण के प्रेम के लिए वह किसी अन्य समझौते के लिए तैयार नहीं हो सकती।''[18]

कुमकुम संघारी, परिता मुक्ता आदि कुछ ऐसे नाम है जिन्होंने मीरां पर अपनी कलम चलाई। इनका लेखन मूलतः अंग्रेजी भाषा में है। परिता मुक्ता ने मीरां की मृत्यु के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह दिया है कि मीरां का विलीनीकरण मूर्ति में नहीं वरन् पश्चिम भारत की उन जातियों में हुआ है जहां स्त्रियां राजपूत समाज की तुलना में अधिक स्वतंत्र थी। परिता मुक्ता मीरां की एक गंभीर शोधार्थी कहीं जा सकती है जिन्होंने बहुत मेहनत से मीरां संबंधी तथ्य तथा सामग्री एकत्र की है। कुछ दिनों पूर्व जोधपुर व उदयपुर में मीरां संबंधी संगोष्ठियाँ भी हो चुकी है किन्तु उनकी उपादेयता संदेह के घेरें में हैं। अंत में यह कहना चाहिए कि मीरां पर वर्तमान समय में जितने भी आलोचना ग्रंथ उपलब्ध हैं उनमें से कोई भी ग्रंथ मीरां की पूर्ण एवं विस्तृत आलोचना प्रस्तुत नहीं करता निःसंदेह मीरां पर और अधिक व्यवस्थित अध्ययन की जरूरत है।

संदर्भः

1. पद्मिनी महल, चित्तौड़ दुर्ग, चित्र-64
2. कर्नल टॉड, एनल्स एण्ड एन्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान, पृ.-232
3. वही, पृ.-17
4. कविराजा श्यामलदास, वीर विनोद (भाग-2), पृ.-01
5. वही, पृ.-02
6. गौरीशंकर हीराचंद ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ.-358

7. मुंशी देवी प्रसाद मिश्र, मीरांबाई का जीवन चरित्र, पृ.-02

8. डॉ. सी.एल. प्रभात, मीरा: जीवन और काव्य, पृ.-89

9. ललिता प्रसाद सुकुल (सं.), मीरांबाई का जीवन चरित्र: मुंशी देवी प्रसाद, पृ.-'ए'

10. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.-101

11. 'मीरां स्मृति ग्रंथ', बंगीय हिन्दी परिषद्, पृ.-'इ'

12. रामप्रसाद त्रिपाठी, 'मीरां स्मृति ग्रंथ', पृ.-4

13. 'परम्परा', पुरोहित हरिनारयाण विशेषांक, पृ.-50

14. विश्वनाथ त्रिपाठी, मीरा का काव्य, पृ.-72

15. पद्मावती शबनम, मीरा: एक अध्ययन, पृ.-36

16. वियोगी हरि, मीरांबाई के सुबोध पद, भूमिका

17. वही, भूमिका

18. डॉ. गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान का इतिहास, पृ.-514

उपसंहार

उपसंहार

आज तक मीरां सम्बंधी जितने भी आलोचना ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं उनमें से अधिकांश आलोचना ग्रंथ केवल कुछ भक्तमालों में मीरां सम्बंधी पंक्तियों, वार्ता साहित्य में मीरां सम्बंधी टिप्पणियों मीरां के नाम पर प्रचलित पदों की पांडुलिपियों एवं जहाँ तहाँ से प्राप्त की गई ऐतिहासिक सूचनाओं पर आधारित है। अनुमान किया जा सकता है कि मीरां के जीवन से सम्बंधित स्रोत सामग्री का कितना उल्लेखनीय अभाव आलोचकों के सामने प्रस्तुत था। स्रोत सामाग्री के इस अभाव की स्थिति में मीरां सम्बंधी जितमें भी आलोचना ग्रंथ प्रकाश में आए है वे अनेक न्यूनताओ से युक्त एवं आधी अधुरी सूचनाओ पर आधारित है, यही कारण है कि मीरां पर आज तक कोई गंभीर आलोचना ग्रंथ देखने में नहीं आया है जिस प्रकार कि सूर, तुलसी जायसी आदि भक्त कवियों पर आलोचनाएँ देखने को मिलती है।

स्रोत सामग्री के अभाव के पश्चात् मीरां सम्बंधी अध्ययन के दौरान जो दूसरी बड़ी समस्या दिखाई देती है वह है उपलब्ध स्रोत सामग्री की प्रामाणिकता पर संदेह। विशेष तौर पर मीरांके नाम पर विभिन्न पुस्तकालयों, संग्रहालयों, मंदिर तथा मठों में मिलने वाले पदों की प्रामाणिकता हमेशा संदेह के घेरे में बनी रहती है। एक समस्या यह भी है कि वार्ता साहित्य तथा भक्तमालो में मीरां सम्तंधी जो थोड़ी बहुत टिप्पणियां मिलती हैं वे भी प्राय: पूर्वाग्रहों से युक्त एवं व्यक्तिगत मतो पर आधारित होती है ऐसी स्थिति में किसी भी प्रामाणिक सत्य की तह तक पहुचना बहुत मुश्किल हो जाता है। संभव है यही कारण रहा होगा कि मीरां पर आज तक कोई ऐसा गंभीर आलोचना ग्रंथ दिखाई नहीं देता जिस प्रकार कबीर, सूर, जायसी, तुलसी आदि भक्त कवियों पर देखने को मिलता है।

प्रथम तो मीरां एक महिला थी दूसरे जिन माता-पिता के घर में मीरां का जन्म हुआ था वे एक बहुत ही छोटी जागीर के मालिक थे जिनकी पुत्री के नाम कोई ग्रंथ लिखा जाय संभव नहीं था। मीरां महाराणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र कुंवर भोजराज की पत्नी थी किंतु भोज की मृत्यु के साथ ही मीरां का राजनैतिक महत्व पहले की अपेक्षा कम होना स्वभाविक था। महाराणा सांगा की मृत्यु के बाद राजमहल में होने वाले आंतरिक सत्ता संघर्ष में भी मेड़तियों के साथ मीरां को पराजित होना पड़ा यही सब कारण थे कि मीरां किसी भी ऐतिहासिक वर्णन की विषय वस्तु नहीं बन सकी।

परिणाम स्वरूप मीरां के सम्बंध में मिलने वाले ऐतिहासिक विवरणों का अभाव देखने को मिलता है। फलतः आज तक मीरां पर प्रकाशित समस्त आलोचना ग्रंथ एवं सामग्री अपुष्ट स्रोतों पर आधारित आलोचन ग्रंथ हैं जिनसे किसी नवीन सत्य की अपेक्षा करना उचित नहीं था।

यह सत्य है कि मीरां पर अन्य भक्तों कवियों व जनप्रिय व्यक्तियों के समान ऐतिहासिक साहित्यिक स्रोत सामग्री का अभाव है तथापि लोक से प्राप्त साक्षयों एवं चित्तौड़, मेड़ता तथा मारवाड़ व मेवाड़ के दुर्गों मंदिरों में फैले मूक पुरातात्विक साक्ष्यों का आधार ग्रहण करें तो हमे अनेक महत्वपूर्ण जानकारियां प्राप्त होती है किंतु इसे विडम्बना ही कहा जाएगा कि मीरां के आलोचक ही नहीं मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के अधिकांश आलोचक इस प्रकार की किसी भी आलोचना शैली से हमेशा परहेज करते आए हैं।

लोक में मीरां से सम्बंधित अनेक किवदंतियाँ एवं कथाएँ प्रचलित हैं जिनके मूल में कोई न कोई कारण विद्यमान रहता है। इन किवदंतियों में मीरां के प्रति जनसामान्य का प्यार तो झलकता ही है साथ ही साथ मीरां के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण सूचनाएँ भी प्राप्त होती है किंतु आवश्यकता उन किवदंतियों का तत्कालीन मेवाड़ के रीति रिवाज एवं परम्पराओं के आलोक में व्यवस्थित वैज्ञानिक विश्लेषण की होती है। ताकि अंतिम सत्य तक सुगमता पूर्वक पहुचा जा सके। डी.डी. कौशाम्बी जैसे इतिहासकारों ने इस पद्वति का बहुत ही सुंदर उपयोग किया है। किंतु हिन्दी आलोचना इतनी अधिक पिछडी हुई दशा में है कि इस प्रकार का कोई व्यवस्थित प्रयास देखने में नहीं आया है।

पुरातात्विक साक्ष्य किसी भी ऐतिहासिक घटना, समाज तथा व्यक्तित्व का मूक किंतु विश्वसनीय साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। शिलालेख तो सीधे-सीधे इतिहासकार से संवाद करते नज़र आते हैं। किसी भी ऐतिहासिक व्यक्तित्व एवं समस्या का इनसे बेहतर निष्पक्ष तथा पूर्वाग्रह रहित विवरण किसी अन्य स्रोत से प्राप्त करना संभव नहीं है। चित्तौड़ दुर्ग स्थित महलों, मंदिरों तथा शिलालेखों से भी मीरां के बारे में कई महत्वपूर्ण सूचनाएँ मिलती है। उदाहरण स्वरूप मीरां महल व मीरां मंदिर की भव्यता एवं नियत स्थान को देखकर हम मीरां के राजनैतिक प्रभुत्व का आसानी से अनुमान कर सकते हैं।

इसी प्रकार मूर्ति शिल्प भी मीरां युग के समाज, तत्कालीन धार्मिक मान्यताओं और भक्ति के स्वरूप की बेहतर जानकारी प्रदान करता है। अतः मीरां के

सम्पूर्ण जीवन की व्यवस्थित जानकारी प्राप्त करने के लिए उपर्युक्त साहित्यिक पुरातात्विक स्रोत तथा किवदंतियों का क्रमबद्ध वैज्ञानिक एवं अन्तः अन्वेषणात्मक अध्ययन करना जरूरी है तभी हम सत्य के ज्यादा से ज्यादा नजदीक पहुचते जाएंगे अन्यथा केवल साहित्यिक एवं हस्तलिखित अप्रामाणिक पांडुलिपियों व मीरां के पदों के सहारे हम मीरां से सम्बंधित किसी भी सत्य का उद्‌घाटन नहीं कर सकेंगे जैसे कि पिछले अनेक वर्षों से हमारी हिन्दी आलोचना यही कर रही है।

स्रोत सामग्री के विस्तृत अध्ययन के पश्चात् उन विद्वान लेखकों, आलोचकों व इतिहासकारों के लेखन का महत्व भी कम नहीं है जिन्होने मीरां के युग एवं व्यक्तित्व के बारे में स्वयं की समझ को प्रस्तुत किया। निःसंदेह उन विद्वान लेखकों द्वारा सुझाए एवं अन्वेषित किए गए मार्गों के माध्यम से मीरां तक पहुंचना काफी सरल एवं सुगम हो जाता है। अतः मीरां के जीवन की प्रामाणिक जानकारी प्राप्त करने हेतु उपलब्ध समस्त स्रोत सामग्री का अध्ययन जरूरी है न कि केवल हस्तलिखित एवं मुद्रित स्रोत का अध्ययन।

मीरां के जीवन से संबंधित भक्तमालों व वार्ता साहित्य के उल्लेख भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इन भक्तमालों व वार्ता साहित्य के अध्ययन से मीरां के बारे में भक्त-कवियों की क्या राय थी, इस बारे में कई महत्वपूर्ण जानकारियां मिलती हैं। परचई साहित्य एवं ख्यातों से भी मीरां व उसके युग के संदर्भ में अनेक महत्वपूर्ण सूचनाएं प्राप्त होती हैं। मध्यकालीन साहित्यिक ग्रंथों में मोरां के बारे में जो कुछ थोड़ा बहुत लिखा गया उसका महत्व स्वतः सिद्ध है।

उपर्युक्त तथ्यों के बावजूद सत्य यही है कि मीरां पर आज तक कोई भी उल्लेखनीय आलोचना ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुआ, जो मीरां पर विस्तृत एवं प्रमाणिक जानकारी दे सके। मध्यकालीन भक्त कवियों के मध्य महिला भक्त कवि के रूप में मीरां की लोकप्रियता एवं मीरां में स्त्री चेतना को देखते हुए यह ज़रूरी है कि आज हम एक बार पुनः मीरां द्वारा समाज को दिए गए अवदान का दुबारा मूल्यांकन करें। आज जबकि स्त्रियां अपने अधिकारों एवं स्वयं पर होने वाले अत्यारों के प्रश्न पर पूर्ण प्रतिरोध के मूड़ में हैं हमें एक बार पुनः मीरां की नए सिरे से व्याख्या करनी होगी एवं मीरां को ऐतिहासिक प्रेरणा के रूप में स्वीकार करना होगा। यही मीरां एवं उसके संघर्ष के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजली होगी।

परिशिष्ट

परिशिष्ट

(क) शिलालेख एवं शैलचित्र

शिलालेख क्रमांक	शिलालेख का नाम एवं परिचय
01	चालुक्य नरेश कुमारपाल का शिलालेख, चित्तौड़ दुर्ग (इस शिलालेख से मेवाड़ के क्षेत्रीय विस्तार का पता चलता है। शिलालेख पर उत्कीर्ण ज्योतिषीय आकृतियों से मीरां युग में बढ़ते हुए शास्त्रीय प्रभाव का संकेत मिलता है।)
02	जगत शिरोमणि मंदिर स्थित शिलालेख, उदयपुर (यह शिलालेख गुजराती में है, इससे मेवाड़ क्षेत्र में गुजराती के प्रभाव का पता चलता है। मीरां के नाम पर प्रचलित पदों में गुजराती शब्दावली भी मिलती है।)
03	महाराणा मोकल का शिलालेख, चित्तौड़ दुर्ग (यह शिलालेख मीरां के पूर्ववर्ती युग के समाज व राजनीति की जानकारी देता है।)
04	सती स्तम्भ लेख, राजकीय संग्रहालय, उदयपुर (प्रस्तुत लेख में नाथीबाई नामक स्त्री के सती होने का उल्लेख है।)
05	जहाजपुर अभिलेख, राजकीय संग्रहालय, उदयपुर (जहाजपुर अभिलेख में सामुहिक सतीप्रथा का उल्लेख है।)
06	सूर्य मंदिर के प्रवेश द्वार पर स्थित शिलालेख, चित्तौड़ दुर्ग (इस शिलालेख से पता चलता है कि कालिका मंदिर पहले सूर्य मंदिर था।)
07	सूर्य मंदिर के प्रवेश द्वार पर स्थित शिलालेख, चित्तौड़ दुर्ग (प्रस्तुत शिलालेख में कालिका मंदिर स्थापना की सूचना दी गई है।)

08 सूर्य मंदिर के गर्भगृह के निकट स्थित शिलालेख, चित्तौड़ दुर्ग (इस शिलालेख से तत्कालीन धार्मिक स्थिति की जानकारी के साथ-साथ साम्प्रदायिक सद्भाव का प्रमाण मिलता है।)

09 सूर्य मंदिर स्थित स्तम्भ लेख, चित्तौड़ दुर्ग (इस स्तम्भ लेख में नाथ योगियों की गुरु शिष्य परम्परा का उल्लेख है। यह लेख मेवाड़ में शाक्तों के प्रभाव का भी खुलासा करता है।)

10 शृंगार चंवरी का स्तम्भ लेख, चित्तौड़ दुर्ग (यह लेख मीरां के समय से कुछ पहले का है। प्रस्तुत स्तम्भ लेख से दुर्ग में साम्प्रदायिक सद्भाव व धार्मिक समन्वय की जानकारी मिलती है।)

11 शृंगार चंवरी स्थित लघुस्तम्भ लेख, चित्तौड़ दुर्ग (इन स्तम्भ लेखों से मेवाड़ पर जैन मुनियों के प्रभाव का संकेत मिलता है।)

12 नाभानिवास का शिलालेख, गलता, जयपुर (इस शिलालेख में भक्तमाल के रचयिता नाभादास जी एवं उनकी भक्ति की चर्चा है।)

13 गलता प्रवेश द्वार का शिलालेख, जयपुर (इस शिलालेख पर कुछ तिथियां खुदी है जिसमें गलता तीर्थ की प्राचीनता का पता चलता है।)

14 सतीकुण्ड के निकट स्थित शिलालेख, चित्तौड़ दुर्ग (शोध के दौरान इसे पढ़ा नहीं जा सका)।

शैलचित्र क्रमांक	**शैलचित्र का नाम**
01	सूर्य तथा चन्द्रमा, सूर्य मंदिर, चित्तौड़ दुर्ग।
02	बछड़े को दूध पिलाती गाय, सूर्य मंदिर, चित्तौड़ दुर्ग।
03	नाभादास के चरण, गलता, जयपुर।

(ख) मूर्तियां, मंदिर, महल तथा शिलालेख

चित्र संख्या	चित्र परिचय
01	नग्न नायक एवं नायिका
02	वात्सल्य रस प्रधान मूर्तियां
03	नाथ योगी की मूर्ति
04	कुटिल लिपि लेख
05	फारसी शिलालेख
06	भांग घोटते पुरुष
07	विष्णु एवं लक्ष्मी
08	राधा कृष्ण व अन्य देवता
09	नर्तकियां व वाद्य यंत्र
10	सती स्तम्भ लेख
11	जहाजपुर अभिलेख
12	देवी की प्रतिमा
13	अप्सराओं की मूर्तियां
14	देवी की मूर्ति
15	कलश की मूर्ति
16	भाले की आकृति
17	परशुराम की मूर्ति

18	तीर्थंकर की मूर्ति
19	द्वारपाल जय
20	सिंह पुरुष की मूर्ति
21	आभूषण युक्त अप्सरा
22	लक्ष्मी देवी की मूर्ति
23	संगुफित नायिका
24	प्रणय दृश्य
25	अप्सराओं की मूर्तियां
26	सिंहहस्ती का संगुफन
27	तीर्थंकरों की मूर्तियां
28	देव पुरुष की मूर्ति
29	छाछ बिलोती स्त्री
30	शिव का मस्तक
31	गर्भगृह प्रवेशद्वार, मीरां मंदिर
32	नायिका की मूर्ति
33	गरूड़ारूढ़ तीर्थंकर
34	ऊंट पर सवारी
35	बाहरी दीवार, श्रृंगार चंवरी

36	कामरत युगल
37	तीर्थंकरों से युक्त शिवलिंग
38	लोक देवता की मूर्ति
39	ब्रह्मा तथा सरस्वती
40	गर्भगृह प्रवेशद्वार, मीरां मंदिर
41	कृष्ण का गीता उपदेश
42	नायिका की मूर्ति
43	गारूड़ारूढ़ देव
44	जनजीवन का दृश्य
45	बेल तथा पत्तियां
46	प्रणयातुर युगल
47	रैदास के चरण
48	गर्भगृह प्रवेशद्वार, मीरां मंदिर
49	गर्भगृह प्रवेशद्वार, मीरां मंदिर
50	गणेश की मूर्ति
51	भैरव देव की मूर्ति
52	गुरूड़ारूढ़ विष्णु
53	विष्णु तथा ऐरावत

54	छत, रैदास की छतरी
55	कीचक की मूर्ति
56	घोड़े की सवारी
57	सिंहाकृति, रैदास की छतरी
58	शिल्पी की मूर्ति
59	रतिमग्न युगल
60	परिक्रमा का मूर्ति शिल्प
61	मूर्ति शिल्प में प्रकृति
62	मीरां महल, दृश्य-1
63	मीरां महल, दृश्य-2
64	पद्मिनी महल
65	मीरां महल, दृश्य-3
66	मीरां महल, दृश्य-4
67	फत्ता महल
68	मीरां मंदिर, दृश्य-1
69	कीर्ति स्तम्भ
70	चित्तौड़ दुर्ग का दृश्य
71	मीरां महल, मेड़ता

72	मीरां मंदिर, दृश्य-2
73	मीरां महल, दृश्य-5
74	विक्टोरिया हॉल
75	शृंगार चंवरी
76	छत, मीरां महल

संदर्भ-सूची

संदर्भ-सूची

भक्तमाल

1. श्रीभक्तमाल — नाभादास
   राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान
   जोधपुर, 1965
2. भक्तिरस बोधिनी (टीका) — प्रियादास
   राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान
   जोधपुर, 1965
3. भक्तमाल — राघवदास
   राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान
   जोधपुर, 1965
4. भगतमाल — ब्रह्मदास
   राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान
   जोधपुर, 1997

वार्ता साहित्य

1. चौरासी वैष्णवन की वार्ता
   पूजा प्रकाशन
   अहमदाबाद, 2004
2. दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता
   पूजा प्रकाशन
   अहमदाबाद, 2004

ख्यात साहित्य

1. नैणसी री ख्यात
   राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान
   जोधपुर, 1965
2. बाँकीदास री ख्यात
   राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान
   जोधपुर, 1965
3. मूंदियाड़ री ख्यात
   ठा. अर्जुन सिंह सोनगरा (प्रकाशक)
   साँचौर, जालोर, 2005

अन्य

1. पद प्रसंग माला — नागरीदास, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, 1997
2. मारवाड़ परगनां री विगत — मुँहता नैणसी, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, 1965

इतिहास ग्रंथ

1. वीर विनोद — कविराजा श्यामलदास, बी.आर. एण्ड सन्स, दिल्ली, 1990
2. उदयपुर राज्य का इतिहास (दो भाग) — गौरीशंकर हीराचंद ओझा, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2000
3. राजपूतकालीन संस्कृति (1600 ई. से 1200 ई.) — गौरीशंकर हीराचंद ओझा, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2000
4. मध्यकालीन भारतीय संस्कृति — गौरीशंकर हीराचंद ओझा, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2000
5. सुप्रसिद्ध इतिहासकार कर्नल जेम्स टॉड का जीवन चरित्र — गौरीशंकर हीराचंद ओझा, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2000
6. हिन्दूपति महाराणा सांगा — हरविलास सारड़ा, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2000
7. मारवाड़ का इतिहास (दो भाग) — विश्वेश्वरनाथ रेउ, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 1995
8. जयमल वंशप्रकाश — गोपाल सिंह, ठा. गोपाल सिंह (प्रकाशक), बदनौर, वि.स. 2031

9.	राजस्थान का इतिहास	गोपीनाथ शर्मा शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी आगरा, 2000
10.	राजस्थान में ग्रंथों की खोज	निदेशक, राजस्थानी शोध संस्थान राजस्थानी ग्रंथाकार एवं राजस्थानी शोध संस्थान जोधपुर, 2004
11.	प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता (अनु.-गुणाकर मुले)	दामोदर धर्मानन्द कोसंबी राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 1990
12.	मध्यकालीन भारत	इरफान हबीब (संपादक) राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 1999
13.	Hand Book to Victoria Hall Museum, Udaipur	Director Department of Archeology & Museums Govt. of Rajasthan, Jaipur, 1961
14.	Annalds & Antiquities of Rajasthan	C.J. Tod Motilal Banarasi Das Delhi, 1987
15.	Archeological Remains (Monuments & Museums)	Director General Archeological Survey of India New Delhi, 1996

पद संग्रह एवं आलोचना ग्रंथ

1.	मीरांबाई का जीवन चरित्र (सं.-ललिता प्रसाद सुकुल)	मुंशीदेवी प्रसाद बंगीय हिन्दी परिषद् कलकता, संवत् 2007
2.	मीरां स्मृति ग्रंथ (संपादित)	संपादन मंडल बंगीय हिन्दी परिषद् कलकता, संवत् 2000
3.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल नागरीप्रचारिणी सभा काशी, 2000
4.	मीराँ: एक अध्ययन	पद्मावती 'शबनम' लोक सेवक प्रकाशन

		बनारस, संवत् 2007
5.	मीराँ: व्यक्तित्व और कृतित्व	पद्मावती हिन्दी प्रचारक संस्थान बनारस
6.	मीराँबाई की पदावली	परशुराम चतुर्वेदी हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, 1998
7.	मीरा: जीवन और काव्य (दो भाग)	डॉ. सी.एल. प्रभात राजस्थानी ग्रंथाकार जोधपुर, 1999
8.	मीरां चरित	सौभाग्य कुंवरी राणावत मृत्युजंय सिंह सिसोदिया (प्रकाशक) उज्जैन, 2003
9.	भक्त मीरांबाई	डॉ. जी.एन. शर्मा मीरां कला मंदिर उदयपुर, 1990
10.	मीरां दर्शन	प्रो. मुरलीधर श्रीवास्तव साहित्य भवन (प्रा.) लिमिटेड इलाहाबाद
11.	Meera Bai and Her Community	Parita Mukta Oxford University Press Delhi, 2004
12.	मीरा का काव्य	विश्वनाथ त्रिपाठी वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 2000
13.	मीरां बृहत्पदावली (भाग 1)	पुरोहित हरिनारायण राजस्थान प्राच्च विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, 1968
14.	मीरां मुक्तावली	नरोत्तमदास स्वामी राजस्थानी ग्रंथागार जोधपुर, 1997
15.	मीरांबाई के सुबोध पद	वियोगी हरि सस्ता साहित्य मंडल

		दिल्ली, 2003
16.	मीरा माधव	नंद किशोर आचार्य वाग्देवी प्रकाशन बीकानेर, 2000

पत्रिकाएं एवं स्मारिकाएं

1.	परम्परा (विद्याभूषण पुरोहित हरिनारायण विशेषांक)	राजस्थानी शोध संस्थान जोधपुर, 1982
2.	परम्परा (मीरांबाई की परची व परची काव्य)	राजस्थानी शोध संस्थान जोधपुर, 1984
3.	परम्परा (इतिहासकार मुंशी देवीप्रसाद)	राजस्थानी शोध संस्थान जोधपुर, 1986
4.	परम्परा (संत सुखसारण जी प्रणीत- नामप्रतीत भगतमाला)	राजस्थानी शोध संस्थान जोधपुर, 2000
5.	जौहर साका स्मारिका (1997 से 2005 तक)	जौहर स्मृति संस्थान चित्तौड़गढ़
6.	मीरा उत्सव (1990 से 2005 तक)	मीरा स्मृति संस्थान चित्तौड़गढ़
7.	अंतर्राष्ट्रीय मीरां संगोष्ठी (स्मारिका)	राजस्थानी विभाग जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय जोधपुर
8.	Economic and Political Weekly	Sahid Bhagat Singh Road Mumbai
9.	Manushi (Women Bhakta Poets)	Lajpat Nagar New Delhi, January-June 1999

संग्रहालय एवं शोध संस्थान

1. राजकीय संग्रहालय
   राजस्थान सरकार, उदयपुर
2. राजकीय संग्रहालय
   राजस्थान सरकार, बीकानेर
3. चन्द्रधारी संग्रहालय
   बिहार सरकार, दरभंगा
4. राजकीय संग्रहालय

राजस्थान सरकार, चित्तौड़गढ़

5. राजकीय संग्रहालय
   राजस्थान सरकार, जोधपुर
6. सिंहपुर महल
   कार्यालय, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण
   चंदेरी, मध्य प्रदेश
7. तोपखाना भवन
   कार्यालय, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण,
   चित्तौड़गढ़
8. पोथीखाना
   सिटी पैलेस, जयपुर
9. पोथीखाना
   सिटी पैलेस, उदयपुर
10. पोथीखाना
    लालगढ़ पैलेस, बीकानेर
11. प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान
    राजस्थान सरकार, उदयपुर
12. प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान
    राजस्थान सरकार, जोधपुर
13. प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान
    राजस्थान सरकार, जयपुर
14. प्रताप शोध संस्थान
    उदयपुर
15. राजस्थानी शोध संस्थान
    जयपुर
16. मीरां कला मंदिर शोध संस्थान
    उदयपुर
17. मीरा स्मृति संस्थान
    चित्तौड़गढ़